हिंदी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा, कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna • Quarterly Magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada

वर्ष ११, अंक ४२, अप्रैल 2009 • Year 11, Issue 42, April 2009

जितना आप सोच सकते हैं उससे कम में अपने अपने देश के साथ जुड़ें

Bell TV के साथ , केबल से 55% से भी अधिक कम कीमत पर[1], अपने देश से भी अधिक क्रिकेट देखने को अपना लक्ष्य बना सकते हैं। इस मौसम, खेल में शामिल हो जाओ।

दक्षिण एशियाई कोम्बो

ATN SONY Entertainment Television

$10/MO.[2] 12 महीने के लिए

Bell TV बल्ले बाजी करने जा रहा है बड़ी विशेषताओं के साथ जैसे
. 500 से अधिक डिजिटल चैनल चुनाव के लिए अधिकाँश HD में मिलाकर
. उत्कृष्ट पिक्चर क्वालिटी नियमित केबल से 10 गुणा बेहतर
. शामिल करें चिन्ता मुक्त पूरा होम सेटप[3]

ICT North: 1 888 735-9777

Bell TV देखना अब हुआ बेहतर

Offer ends Feb. 28, 2009. Available where access and line of sight permit. Digital service fee ($3/mo. per account) extra. Upon early termination, price ajustment charges apply. Subject to change without notice. Taxes extra. Other conditions apply. (1) As of Dec. 12, 2008. Compared to Rogers' South Asian combo billed $24.95/mo. (2) With new account on a min. 2-yr. contract and subscription to South Asian combo at time of activation. Regular rates apply at the end of the promotional period. (3) Details at bell.ca/installationincluded.

इस अंक में...

३ पाती
६ संपादकीय
७ हाथ कलम का रोक लिया- राकेश खण्डेलवाल
८ ग़ज़ल- महावीर शर्मा
८ ग़ज़ल- सतपाल ख़्याल
८ अख़बार- साहिल लखनवी
८ यह मशाल-रेणुका भटनागर
९ नवम्बर मुम्बई काण्ड - महाकवि आदेश
९ मिट्टी और सोना - पंकज जैन
१० ग़ज़ल- महेश नंदा
११ साक्षात्कार - सुभाष नीरव
१३ ३ लघु कविताएँ - राज शर्मा
१४ विलोम चित्र माला - अरविंद नराले
१४ संदीप त्यागी से बातचीत
१५ व्यंग्य- ज्यों ज्यों बढ़े श्याम रंग - प्रेम जनमेजय
१८ संस्मरण- कमलेश्वर जी से मेरी मुलाकात रूपसिंह चंदेल
२१ संस्मरण - रिज़क - ऊषा देव
२२ अंतिम तीन दिन- दिव्या माथुर
३१ जन्म - जन्म के फेरे - लावण्या शाह
३५ गोमती बुआ- अखिलेश शुक्ला
३७ प्रज्ञा परिशोधन - इन्द्रा धीर
३८ समीक्षा - मेरी जीवन यात्रा
३९ समीक्षा -ढाई आखर और मोहब्बत के सिक्के
४० मेरी हत्या क्यों की - रचना श्रीवास्तव
४१ साहित्यिक समाचार
४४ ज़िन्दगी ऐसे जियो - किरन सिंह
४४ कविता - चंदर वर्मा
४५ चित्र काव्य शाला - अरविंद नराले
४७ आतंक और आकांक्षा- जगमोहन हूमर
४८ चित्र - हास्य कवि सम्मेलन
४९ प्राप्त पुस्तकें
५० कैदियों का कब्ज़ा- अभिनव शुक्ल
५१ होली की बोली- अमित कुमार सिंह
५२ उन्मेष - डॉ. यादव
५२ गीत मैं लिखता रहूंगा- भगवत शरण
५३ कान्हां के साथ मैंने भी खेली होली - नीना वाही
५३ होली का हुड़दंग- राज कश्यप
५४ शोक समाचार

आमंत्रण :-

आप अपनी रचनायें प्रकाशन हेतु हमें भेजें। सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि "हिन्दी चेतना" साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात् साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन। एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक पढ़ने का आनन्द प्राप्त कर सकें । हम सभी लेखकों को आमन्त्रित करते हैं कि वे हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें। अगले अंक के लिए अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें। अगर संभव हो तो अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें।

हिन्दी चेतना के नियम :

१ हिन्दी चेतना, अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर, तथा जनवरी में प्रकाशित होगी।
२ प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
३ पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जायेंगी।
४ रचना के स्वीकार व अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा।
५ प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जायेगा।
६ पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं । संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

हिन्दी चेतना वर्ष २००९

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
श्री श्याम त्रिपाठी

सह संपादक
डॉ. निर्मला आदेश (कैनेडा)
डॉ. सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका)

संपादकीय मंडल
अभिनव शुक्ल (अमेरिका)
गजेन्द्र सोलंकी (भारत)
डॉ. इला प्रसाद (अमेरिका)

प्रबंध संपादक
डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा (कैनेडा)
डॉ. ओम ढींगरा (अमेरिका)

मार्ग दर्शक मंडल
डॉ. कमल किशोर गोयनका (भारत)
राज महेश्वरी (कैनेडा)
सरोज सोनी (केनेडा)
उदित तिवारी (भारत)
विनोद चन्द्र पाण्डेय (भारत)
अमित कुमार सिंह (भारत)

प्रमुख : विदेश
डॉ. अंजना संधीर (भारत)
अनिल शर्मा (थाइलैंड)
सुरेशचन्द्र शुक्ला (नार्वे)
यासमीन त्रिपाठी (फ्रांस)
राजेश डागा((ओमान

हिन्दी प्रचारिणी सभा
महाकवि प्रो. आदेश (संरक्षक)
श्याम त्रिपाठी (अध्यक्ष)
भगवत शरण श्रीवास्तव (उपाध्यक्ष)
सुरेन्द्र पाठक (मंत्री)
डॉ. चन्द्र शेखर त्रिपाठी (उपमंत्री)
श्रीमती सुरेखा त्रिपाठी (कोषाध्यक्ष)
शालीन चन्द्र त्रिपाठी (सदस्य)
सुरभि गोबर्धन (सदस्य)

चेतना सहायक
डैनी कावल
अंकुर टेक्साली

मुख्य पृष्ठ

ओ ! प्रकृति की संतान
मूक रहकर भी
प्रकट कर देते हो
अपनी मुस्कान।
जहाँ चाहो वहाँ बना लेते हो
अपनी पहचान
जीवन के हर अवसर पर
बढ़ा देते हो सबकी शान।

अरविंद नराले

सावित्री का बल है नारी, नारी त्याग है सीता का;
रामायण के घर में जैसे, पहरा भगवत् गीता का ।

हिन्दी चेतना को आप आन लाइन भी पढ़ सकते हैं ।
Visit Our Web Site
Http://www.vibhom.com
or home page पर publication में जाकर

घर बैठे पुस्तकें प्राप्त करें
http://www.pustak.org

Hindi Chetna
6 Larksmere Court, Markham,
Ontario, L3R 3R1 Phone
(905) 475- 7165
Fax: (905) 475-8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

■ पाती

सुधा जी ,

"हिन्दी चेतना" के आपने दो अंक मुझे भिजवाए , इसके लिए मैं बेहद आभारी हूं। हिन्दी के वरिष्ट साहित्यकार नरेन्द्र कोहली जी पर केन्द्रित अंक सचमुच एक संग्रहणीय और दस्तावेजी अंक बन पड़ा है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर इतना अनुपम और जानकारी भरा अंक किसी अन्य पत्रिका का मेरी नज़र से तो नहीं गुज़रा है । किसी लेखक को समग्रता में जानने - समझने के लिए यूँ तो उसकी रचनायें ही सहायक होती हैं, परन्तु मेरा मानना है कि इस प्रकार के अंक भी उस लेखक को बाहर - भीतर से समझने - जानने के लिए बेहद उपयोगी हुआ करते हैं। इस अंक के पीछे आप लोगों की लगन ही नहीं, अथक परिश्रम भी स्पष्ट झलकता है।

आपको बधाई। " हिन्दी चेतना" का जनवरी 2009 अंक भी सुरुचिपूर्ण है। तेजेन्द्र शर्मा की कहानी "उड़ान" वर्तमान समय के सच को बयान करती एक बेहद प्रासंगिक और महत्वपूर्ण कहानी है। प्रख्यात साहित्यकार डॉ. महीप सिंह जी से की गई श्याम त्रिपाठी जी की बातचीत , प्राण शर्मा की ग़ज़लें, कुँअर बेचैन का गीत, सुधा ओम ढींगरा की कविता "रूह", ये सब इस अंक को प्राणवान बनाती हैं।

आप और आपकी टीम सात समन्दर पार विदेश में बैठकर हिन्दी और हिन्दी साहित्य के संवर्धन के लिए इतने जी जान से जो कार्य कर रहे हैं , उसकी जितनी सराहना की जाए ,कम होगी। आप लोगों की लगन और उत्साह को मेरा सलाम!

आपका
सुभाष नीरव

डॉ. कोहली विशेषांक के विषय में

प्रिय बंधु श्री श्याम त्रिपाठी जी,
सादर नमन।

बंधुवर जनवरी 2009 का अंक बेबसाइट पर देखा तथा पत्रिका की प्रति भी प्राप्त हुई। पढ़कर आत्मविभोर हो गया। एक - एक रचना मोती के समान सुन्दर है, जिन्हें चेतना के इस अंक में पिरोकर आपने एक सुन्दर माला प्रदान की है साहित्य की देवी को। अधिक व्याख्या नहीं कर पाऊंगा , क्योंकि रचनाएँ सभी सुन्दर हैं। उनके रचयिताओं से इससे अधिक की अपेक्षा करना उचित नहीं।

आप दम्पत्ति की दीर्घायु की कामना करते हुये हिन्दी चेतना के अनवरत उत्थान - हेतु से प्रार्थना करते हैं । डॉ. कोहली विशेषांक प्राप्त हुआ। इतने सुन्दर सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित करने के लिए बधाई। इस अंक का मूल्य इसमें दिये गये साक्षात्कारों के कारण अधिक बढ़ गया है।

विशेषांकों का उद्देश्य ही होता है कि कवि अथवा लेखक की विशेषताओं को प्रकाश में लाया जा सके। किसी भी व्यक्ति विशेष के विषय में स्वयं व्यक्ति से अधिक कोई नहीं जानता। इस अंक में अधिकांश साक्षात्कार ही दिये गये हैं। प्रश्न तथा उत्तर दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ. कमलकिशोर गोयनका द्वारा लिए गये साक्षात्कार को अग्रिम पंक्ति में रखा जाना चाहिए । यह साक्षात्कारों के इतिहास में अपना स्थान बनायेगा।

गोयनका जी द्वारा पूछे गये प्रश्नों के निर्भीक , स्पष्ट तथा सार्थक उत्तर प्रत्येक सुधी पाठक की जिज्ञासा को शान्त करते हैं। साथ ही पुरा कथाओं की अस्मिता को सुरक्षित रखते हुये उनकी सार्वकालिक उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगने देते। सत्य केवल एक है। प्रत्येक मनीषी उसे अतीत से प्राप्त कर युग के अनुकूल बनाकर अग्रिम पीढ़ियों को लौटा देता है अपने अंतिम प्रश्न में गोयनका जी हिन्दुत्व के विकास का प्रश्न उठा देते हैं। हिन्दुत्व के संबंध में वर्तमान परिपेक्ष्य में कोई भी ख्याति प्राप्त लेखक शब्द - कृपण हो सकता था अथवा कूट - वचनावली का आश्रय ले सकता था। यहां तक कि स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू इस प्रश्न पर अचकचा गये थे , परन्तु कोहली जी ने जिस निर्भीकता , विश्वास एवं स्पष्टवादिता से प्रश्न का उत्तर दिया है उससे वह हम जैसे पाठकों की दृष्टि के आकाश में बहुत ऊँचे उठ गए हैं। डॉ. नरेन्द्र कोहली का " कुंभ", श्री अभिनव शुक्ल , डॉ. प्रेम जनमेजय , आचार्य श्रीनाथ द्विवेदी , रेणु राजवंशी गुप्ता , सुभाष चन्दर, डॉ., सुभाष चन्दर , डॉ. शशि गुप्ता आदि खाति ब्राप्त लेखकों की सफल अभिव्यक्ति तथा श्री गजेन्द्र सोलंकी की कविता प्रशंसनीय है। उपर्यक्त लेखों ने डॉ. नरेन्द्र कोहली के व्यक्तित्त्व पर सर्वागीण प्रकाश डाला है।

अभिव्यक्ति तथा श्री गजेन्द्र सोलंकी की कविता प्रशंसनीय है। उपर्युक्त लेखों ने डॉ. नरेन्द्र कोहली के व्यक्तित्व एवं लेखन पर सर्वांगीण प्रकाश डाला है। अंक के नामानुरूप इस अंक में आदि से लेकर अंत तक कोहली जी ही चर्चा के केन्द्र बिन्दु बने रहे हैं। अत: उनके जीवन एवं लेखन के किसी भी आयाम को अछूता नहीं छोड़ा गया है । डॉ. कोहली का श्री अरविंद नराले द्वारा अत्याधुनिक शैली में रचित आवरण चित्र निश्चय ही सराहनीय है। इतना सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण विशेषांक प्रस्तुत करने के लिए आप दम्पत्ति तथा डॉ.सुधा ओम ढींगरा जी बधाई के पात्र हैं।

हां, हिन्दी चेतना को विभौम बेबसाइट पर पढ़कर अतीव हर्ष हुआ । हम आदेश - दम्पत्ति की ओर से पुन: पुन: हार्दिक बधाई ।

चरैवैति चरैवैति.....

भवन्निष्ठ,

महाकवि हरिशंकर आदेश (कनाडा)

कैनेडा का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी साप्ताहिक ❖ हर सप्ताह 30,000 पाठक

हिन्दी Abroad

www.hindiabroad.com

हिन्दी Abroad

Published by
HINDI ABROAD MEDIA INC.

Chief Editor
Ravi. R. Pandey
(Media Critic, Ex Sub Editor - Times Of India Group, New Delhi)

Editor
Jayashree

News Editor
Firoz Khan

Reporter
Rahul, Shahida

New Delhi Bureau
Rangnath Pandey
(Ex Chief Sub Editor - Navbharat Times, New Delhi)
Shiela Sharma,
Vijay Kumar

Designing
AK Innovations Inc.
416-892-1538

7071 Airport Road, Suite 204A
Mississauga, ON
Canada. L4T 4J3
Tel: 905-673-9929
Fax: 905-673-9114
E-mail: hindiabroad@gmail.com
editor@hindiabroad.com
Web: www.hindiabroad.com

Disclaimer: The opinions expressed in Hindi Abroad may not be those of the publisher. Contents of this publication are covered by copyright and offenders will be prosecuted under the law.

सुधा जी,

जनवरी की "हिन्दी चेतना" मिली कायाकल्प ही बदल गया है। बाहरी कलेवर से लेकर अन्दर के सामग्री चयन तक। डॉ.महीप सिंह जी से श्री श्याम त्रिपाठी का साक्षात्कार विलोम चित्रकला एवं प्रज्ञा परिशोधन, समीक्षा, आलेख, शिष्टाचार और अभिवादन - इन सबने समूची पत्रिका का चेहरा ही बदल दिया है। यूं भी पत्रिका विभिन्न स्थानों , देशों की साहित्यिक गतिविधियों से भरपूर है और एक झरोखा बन गई है - जहाँ बाकी दुनिया में झाँका जा सकता है । आपके अनथक परिश्रम और लगन का परिणाम है। श्याम त्रिपाठी जी और आपकी हिन्दी के प्रति लगन श्लाधनीय है ।

डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी (अमेरिका)

संपादक जी,

आज समय निकाल कर सारे अंक देख डाले और हैरान हुआ कि अब तक मैं कितनी बड़ी सौगात से वंचित था। सचमुच आप अपने माहौल से इतनी दूर अपनी भाषा, संस्कृति और सोच के लिए बहुत बड़ा काम कर रहे हैं। ये मेरा अनुभव अब पुख़्ता हो गया है कि विदेशों में बसे आप लोग हिन्दी और संस्कृति के लिए हमसे कहीं ज्यादा बड़ा काम कर रहे हैं। इंटरनेट पर ज़्यादातर पत्रिकायें आप लोगों के प्रयासों से ही हैं। आपको और पूरी टीम को को बधाई।

मेरा लिखना ठप्प है फिर भी रचनात्मक रूप से जुड़ना चाहूंगा।

सादर

सूरज प्रकाश (कथाकार) भारत

आदरणीय संपादक जी ,

वैसे तो 'हिन्दी चेतना' का प्रत्येक अंक अपनी खुशबू लिए होता है , लेकिन जनवरी 2009 का अंक बहुत अच्छा लगा । सच कहूँ तो हिन्दी चेतना का चेहरा यानि आवरण बहुत ही आकर्षक और नयापन लिए होता है । इसके लिए श्री अरविंद नराले जी का हार्दिक अभिनन्दन । हालांकि मैं अपनी ओर से कविता रूप में कुछ योगदान नहीं कर पाता हूँ लेकिन मुझे उनका स्थायी स्तम्भ चित्र काव्यशाला बहुत अच्छा लगता है । भविष्य में कुछ लिख पाने का प्रयास करूंगा।
जनवरी अंक जो कि बहुत सुव्यवस्थित और पूर्ण रूपेण संतुलित है, बहुत भाया । आपको आपके सफल प्रयास के लिए साधुवाद और आपके सहायक वृन्द को राष्ट्रभाषा हिंदी की सेवा में निरंतर जुटे रहने के लिए बहुत- बहुत बधाई।
आपका स्नेहाकांक्षी,
गजेश धारीवाल (मस्कत)

संपादक जी ,

"हिन्दी चेतना" के नए अंक के प्रकाशन पर आपके सफल प्रयासों के लिए हार्दिक बधाई व शुभकामनाएं। ऐसे ही हिन्दी जगत में इस ज्योति को जलाये रखें। अंक सराह-नीय है।

शुभकामनाओं सहित,
आशा

आदरणीय संपादक जी नमस्कार,

' हिन्दी चेतना' के जनवरी अंक को पढ़कर बहुत आनन्द मिला। भारत से इतनी दूर बैठ हुये आप हिन्दी की सच्ची सेवा कर रहे हैं। आपको तो यहां भारत में होना चाहिये जहाँ बच्चा - बच्चा हिन्दी के बजाये अंग्रेजी की बीन बजा रहा है। हमें आपकी पत्रिका पर गर्व है। आप इसे जारी रखिये।

किरन सिंह
भारत

आदरणीय संपादक जी,

'हिन्दी चेतना' का जनवरी अंक मिला तो एक बार को सुखद आश्चर्य हुआ । यह पत्रिका कनाडा से निकल रही है और इतनी सुन्दर निकल रही है कि ऐसा भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है ।
यह तो कायाकल्प है तथा विदेशों में प्रकाशित होने वाली हिन्दी पत्रिका को ऊंचाइयों तक ले जाने का सत्प्रयास है । इसकी साज - सज्जा आकर्षक तथा सामग्री भी मौलिक एवं पठनीय है और आपका सम्पादकीय विचारोत्तेजक तथा अनुकरणीय है । मुंबई में हुए आतंकवादी हमले पर आपका क्रोध एवं संकल्प आपके अटूट देशप्रेम का प्रमाण है। आप कैनेडा में बैठे हैं , परन्तु अपनी मातृ भूमि के प्रति इतने संवेदनशील हैं कि देश को आतंकवादियों से निर्मूल बना देना चाहते हैं। आपका संपादकीय गहरे दर्द और व्यथा का प्रमाण है कि भारतवासी कब तक सोते रहेंगे?आतंकवादी देश के शत्रु हैं और शत्रु के साथ जैसा व्यवहार होता है, वैसा ही व्यवहार होना चाहिये। लेकिन हमारा देश नपंसुक हो गया है। वह अपराधी को फाँसी देने से भयभीत है। सारा देश चीख -चीख कर कह रहा है कि अपराधी को फाँसी दो , परन्तु फाइल कहाँ अटकी है, कोई नहीं जानता ,यह देश अदभुत है। हत्यारे, लुटेरों, बर्बरों को आश्रय देता है और देशप्रेमियों की उपेक्षा करता है । कश्मीर में हमारे सैनिक मर रहे हैं और हम आतंकवादियों को जेल में स्वादिष्ट भोजन करा रहे हैं।
आपकी यह भावना कि देश में आग लगी है , मेरे मन आग लगी है कि हम अपराधियों और उसके सहायकों को आग लगा दें, प्रत्येक भारतवासी की यही आवाज़ है। शहीदों की चिताएं हमें धिक्कार रही हैं और हम सोये हुये देश को घायल आहत होते देख रहे हैं। हमें अब जागना होगा और देश को शत्रु विहीन करना होगा । प्रवासी साहित्य पर एक नेटवर्क बनाने का मैं समर्थन करता हूं। यह उपयुक्त विचार है। विश्व हिंदी सचिवालय इस कार्य को उठा सकता है।

मुझे विश्वास है कि आपका यह विचार शीघ्र ही फलीभूत होगा और प्रवासी हिन्दी साहित्य एक मंच पर आ सकेगा। इस अंक का साहित्य पक्ष समृद्ध है और रचनाएं प्राय: स्तरीय हैं। सुधा ढींगरा , प्राण शर्मा, कुँअर बेचैन, तेजेन्द्र शर्मा, कनिका सक्सेना, डॉ.फीरोज अहमद, डॉ. इलाप्रसाद, रजनी भार्गव, शशि पाधा .ओंकार प्रसाद द्विवेदी, आदि की रचनाएं पत्रिका को महत्त्वपूर्ण बनाती हैं।

इसके संपादन - प्रकाशन में आपकी टीम ने जो कार्य किया है, वह मिल- जुलकर काम करने का उत्तम उदाहरण है । कनाडा - अमेरिका के हिन्दी एवं भारत - प्रेमियों का यह अनुष्ठान स्वागत योग्य है ।
मुझे विश्वास है, यह हिन्दी संसार में सम्मानित होगा और

'हिन्दी चेतना' को यश प्राप्त होगा।
शुभकामनाओं के साथ ,
आपका विनीत
कमल किशोर गोयनका

• •

संपादक जी,
"हिन्दी चेतना" में अब निखार आ गया है ।
जैसे किसी चमन में बहार ही बहार है।
अब इस मनमोहनी को काला टीका लगाकर रखिये,
भले ही आप इसे संवार और सजाकर रखिये ।

प्राण शर्मा (यू. के.)

• •

संपादक जी,
अंक पूरा देख गया और खुशी हुई । मेरी बधाई और शुभकामनाएँ।
संपादन ज़्यादा कसा हो और सजावट ज़्यादा सधी हो, इसकी ज़रूरत लगती है। हमारा लिखा सब कुछ प्रकाशन के लिए नहीं होता, क्योंकि कुछ भी प्रकाशित करना पाठक के प्रति हमारी ज़िम्मेदारी बनता है। लेखक और संपादक दोनों को इसका अहसास होना ही चाहिए।
सबको शुभकामनाएँ।
कुमार प्रशान्त

• •

संपादक जी,

बरसों से मैं हिन्दी चेतना को पढ़ रही हूँ। पर अब पत्रिका का जो रंग रूप निखरा है उसने अति प्रसन्नता दी है। आपको और आपकी टीम को बहुत - बहुत बधाई ।

बिन्दु सिंह - (अमेरिका)

संपादकीय

प्रिय पाठको ,

'हिन्दी चेतना' अप्रैल 2009 का अंक आपकी सेवा में प्रस्तुत है। सभी पुराने नये लेखकों का स्वागत ए वं अभिवादन। विश्व के कुछेक प्रतिष्ठित साहित्यकारों के योग से पत्रिका में एक नई बहार सी आ गई है। यह बात पाठकों के पत्रों से स्पष्ट है। उत्साह भरे पत्रों से हमें प्रेरणा मिलती है। ग्यारह वर्ष पहले इस पत्रिका की जिस कल्पना को लेकर चले थे, वह अब वह फलती - फूलती दिखाई दे रही है। इसका श्रेय चेतना परिवार के उन सभी सदस्यों को जाता है जो निरंतर हमें सहयोग दे रहे हैं।

ई - पत्रिकाओं के प्रकाशन पर बहुत गर्व होता है जो हमें अच्छे स्तर का साहित्य प्रदान करा , अनेकों प्रसिद्ध साहित्यकारों से परिचित कराते हैं। उदाहरण के लिए गर्भनाल को लीजिए, जिसके प्रकाशन ने हिन्दी जगत के लिए एक खज़ाना सा खोल दिया है । इसका प्रत्यक्ष लाभ प्रवासी साहित्यकारों को तो भरपूर हुआ ही है साथ ही इसने एक ऐसा माप दण्ड बना दिया है कि लोग भौचक्के रह गये हैं। इतना सुन्दर हिन्दी का कार्य सबको रुचिकर लग रहा है । हर नया अंक ,एक नया रूप, नई दिशा लेकर प्रस्तुत होता है । इसकी भरपूर सामग्री पढ़ते -पढ़ते मन सरावोर हो जाता है। आकर्षक, समृद्ध साहित्य हमें इसके द्वारा पढ़ने को मिलता है। गर्भनाल ने विश्व के कोने - कोने से हिन्दी साहित्यकारों को एक मंच पर एकत्रित कर दिया है। लेकिन इस कार्य के पीछे कितनी साधना , तपस्या और त्याग है, इसका अनुमान मैं स्वयं भली भांति अनुभव कर सकता हूँ । मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि हिन्दी का यह पौधा खूब फले फूले। हम सभी प्रवासी हिन्दी प्रेमियों को इस यज्ञ में आहूति डालनी चाहिये।
गत मास उत्तरी अमेरिका में हिन्दी की बहुत सी गतिविधियां हुईं। कैनेडा और अमेरिका के विभिन्न नगरों में पन्द्रह हास्य कवि सम्मेलन आयोजित हुये। जिनका आयोजन अमेरिका की अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति ने किया। उन्हीं की सद्‌भावना से कनाडा में भी एक विराट् हास्य कवि सम्मेलन हिन्दी चेतना के मंच पर एक 5 सितारा होटल के कक्ष में किया गया। भारत से आए हुए कवि मनजीत सिंह व डॉ. सुरेन्द्र दुबे ने हास्य रस से श्रोताओं के हृदयों को मोह लिया।
मैं अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति का हार्दिक आभारी हूँ जो लगभग 25 वर्षों से ऐसे साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन कर रहे हैं।
ऐसे कार्यक्रमों से हिन्दी जगत को बहुत प्रेरणा मिली है।

आज कल भारत में लोक सभा के लिए मतदान हो रहे हैं । हम भारतवासी विश्व के किसी भी कोने में रहें किन्तु मतदान के समय हमारे दिल भारत में ही पहुँच जाते हैं। विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के उम्मीदवार मैदान में उतरे हैं और सभी विजेता होना चाहते हैं। देखिये ! आगे -आगे होता है क्या। नि:संन्देह फिर किसी की मिली जुली सरकार बनेगी। लेकिन एक बात जो महत्त्व की है वह हमारे देश का प्रजातंत्र । हमारे निर्वाचन की मशीनें अमरीकन मशीनों से कहीं उत्तम हैं जहां नवम्वर 2008 के वोट अभी तक हाथ से गिने जा रहे हैं।

'हिन्दी चेतना' के अप्रैल अंक में कुछ बिलम्ब हो गया इसके लिए आपसे क्षमा याचना। इस बार हमारे कुछ प्रिय लेखको की रचनाएँ प्रकाशित होने से रह गईं इसका हमें खेद है। हमने आपके लिए विविधि प्रकार की सामग्री जुटाई है। हमारा प्रयास आपको कैसा लगा ?आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

आपका
श्याम त्रिपाठी

हिन्दी चेतना
का
अगला अंक फिर एक विशेषांक
प्रतीक्षा करें

एक सुखद सूचना :-

अगले अंक से हम एक नई लेख माला "अहमदाबाद से अमरीका तक" प्रस्तुत कर रहे हैं। लेखिका है सुप्रसिद्ध कवयित्री डॉ. अंजना संधीर। इसमें वह विश्वविद्यालय के अपने शिक्षण के खट्टे -मिट्ठे अनुभवों से परिचित करायेंगी। संपादक

हाथ कलम का रोक दिया है

राकेश खण्डेलवाल (अमेरिका)

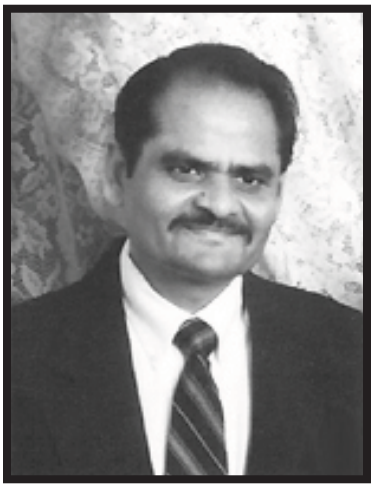

जब जब सोचा नाम तुम्हारा लिखूं ज़िन्दगी के पटल पर
तब तब घिरी विवशताओं ने हाथ कलम का रोक दिया है

लंगड़ाती सी अर्थ व्यवस्था,पांव पसारे पड़ा अनिश्चय
भोर निगल जाती है उगते हुये दिवस के खुद उजियारे
आशंकित अभिलाषाओं का उठता नहीं शीश पल भर को
आईना भी दिखलाता है केवल घिरे हुये अंधियारे

जब जब चाहा नाम तुम्हारा मैं अपने होठों पर लाऊँ
जलती हुई प्यास ने स्वर की अंगड़ाई को रोक लिया है

असमंजस में घिर कर बदलीं परिभाषा की परिभाषायें
संशय का दावानल घेरे रहता है नित सांझ सकारे
किरन आस की रोके पथ में खड़ा क्षितिज पर तना सुमेरू
दृष्टि बचा कर छुपे हुये हैं किस्मत वाले सभी सितारे

जब जब चाहा सपन तुम्हारे भरूँ नयन के भुजपाशों में
बाहों की अशक्ता ने ही तब सपनों को तोड़ दिया है

रुकी हुई नदिया उद्गम पर, जड़ हो गये प्रवाहित निर्झर
रोष भरे पतझर से सहमी उपवन में हैं खड़ी हवायें
परछाईं भी अंधियारे में साथ निभाती नहीं ज़रा भी
सूनेपन की फैली चादर में सिमटी हैं सभी दिशायें

रहे फ़िसलते पग पर तन कर खड़ा हो गया मुश्किल
कुछ दिन का विश्राम करें अब, यही हृदय ने सोच लिया है

ग़ज़ल

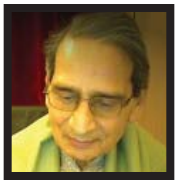

क़ातिल सिसकने क्यूं लगा –

महावीर शर्मा (यू. के.)

सोगवारों में मिरा क़ातिल सिसकने क्यूं लगा
दिल में ख़ंजर घोंप कर, ख़ुद ही सुबकने क्यूं लगा

आइना देकर मुझे, मुंह फेर लेता है तू क्यूं
है ये बदसूरत मिरी, कह दे झिझकने क्यूं लगा

गर ये अहसासे-वफा जागा नहीं दिल में मिरे
नाम लेते ही तिरा, फिर दिल धड़कने क्यूं लगा

दिल ने ही राहे-मुहब्बत को चुना था एक दिन
आज आँखों से निकल कर ग़म टपकने क्यूं लगा

जाते जाते कह गया था, फिर न आएगा कभी
आज फिर उस ही गली में दिल भटकने क्यूं लगा

छोड़ कर तू भी गया अब, मेरी किस्मत की तरह
तेरे संगे-आसतां पर सर पटकने क्यूं लगा

खुश्बुओं को रोक कर बादे-सबा ने यूं कहा
उस के जाने पर चमन फिर भी महकने क्यूं लगा।

ग़ज़ल

सतपाल ख्याल

दरिया से तालाब हुआ हूँ
अब मैं बहना भूल गया हूँ।

तूफाँ से कुछ दूर खड़ा हूँ
साहिल पर कुछ देर बचा हूँ

नज़्में ग़ज़लें सपने लेकर
बिकने मैं बाजार चला हूँ

हाथों से जो दी थी गाँठें
दाँतों से वो खोल रहा हूँ

यह कह-कह कर याद किया है
अब मैं तुझको भूल गया हूँ

याद ख्याल आया वो बचपन
दूर जिसे मैं छोड़ आया हूँ।

"अख़बार"

"साहिल लखनवी" (अमेरिका)

बीते वक़्तों की बात करते हो
जी को बहलाने की बात करते हो
अपने हम उम्र ढूंढो मियाँ !
लैला मजनू की बात करते हो ।।
ख़बर जब पुरानी हो जाए,
तो ख़बर नहीं रहती,
एक हादिसा या वाकया हो जाती है ।
कल के अख़बार हो,
बस यही अहमियत है मियाँ !
कि सर्द हवा से बचने के लिए,
कोई ग़रीब अपने रौशनदान पे चिपका दे तुमको,
या, कोई बच्चा मानिंदे जिल्द किताब पे चढ़ा ले तुमको
काग़ज़ी ताज बनाकर सर पे सजा ले तुमको।
बरसात में कश्ती बना के बहा दे तुमको।
या, एकऐरोज़ा थैला बन जाओ,
सौदा सुल्फ़ के लिए, या फिर
इंतिज़ार करो, रद्दी की उन गाँठों में
जो ताज़ा काग़ज़ बनेंगी,
कल के अख़बार के लिए

"यह मशाल"

रेणुका भटनागर (अमेरिका)

क्यों , फिरते हो यह मशाल लिए
इर्ष्या, घृणा और क्रोध की यह मशाल !
जिसका वक्त केवल समय और वजह से है-
पता तो है यह सब कितना क्षणिक है;
फिर भी क्यों नहीं छोड़ पाते ?
मालूम है कि आगे बहुत आगे-
शतशः प्रकाशित दिवाकर का एक समुद्र है -
जहां जाकर इस मशाल को खो जाना है-
मन चुप - चुप सब सुनता है
चुप - चुप कुछ गुनता है -
मन्द मुस्कान ले करवट बदल लेता है;
दिवाकर का समुद्र तो आगे है
कल किसने देखा है-
और मशाल ले, चल देता है!

कविता

छब्बीस नवम्बर २००८ मुम्बई काण्ड

उद्‌बोधन

रचयिता – महाकवि प्रो. हरि शंकर आदेश (कनाडा)

जंक लगी हो यंत्र बदल दो,
जो न शुद्ध हो मंत्र बदल दो।
जो न देश को संभाल पाए,
अक्षम शासन-तंत्र बदल दो।।

खण्ड-खण्ड कर देश - एकता,
बन बैठे जो स्वयं देवता।
जाति - प्रान्त - भाषा - विभेद ले,
जन-मन में भरते अनेकता।।

धर्म - हानि की बांग लगाते,
प्रगति - पंथ में टांग अड़ाते।
वैमनस्य को बढ़ा सदा
आरक्षण की है मांग उठाते।।

मन्दिर-मस्जिद- चर्च - गुरुद्वारा,
राम - रहीम - मसी -गुरुप्यारा।
जिसने जन्म लिया इस भू पर,
भारत है सबका ही प्यारा।।

कोई भाषा, कोई बोली,
कोई प्रान्त, गली या टोली।
सर्वोपरि है देश सभी से,
करो न इसके संग ठिठोली।।

हिन्दु - मुसलमानों की माता,
सिक्ख - ईसाई जन की माता।
जिसने जन्म लिया इस भू पर,
सबकी माता भारत माता।।

रहा खेलता रिपु सरहद तक,
आ पहुंचा अरि था संसद तक।
अब उद्योग -राजधानी पर,
आ पहुंचा मुम्बई वृहद् तक।।

तीन- तीन स्थल अग्नि काण्ड कर,
बम -विस्फोट किए स्थल-स्थल पर।
प्राण हरण कर निर्दोषों के, barsaa}gaai layaa inarntar__

हुए मृतक नर - नारी - बालक
कितने मर गए अतिथि विदेशी,
कितने वीर शहीद हो गए,
काल-ग्रास बने कितने देशी।।

बम गोलों अथवा गोली पर,
किसी धर्म का नाम न होता।
एक बार लग जाए तो
कोई भी धर्मी आहत होता।।

पारस्परिक भावना भय की,
अब हृदयों से दूर भगाओ।
भ्राताओं भ्राताओं संग मिल,
बैरी से निज देश बचाओ।।

दो न शत्रु को शरण घरों में,
धन लेकर ईमान न बेचो।
मिल मेटो आतंकवाद को,
मित्रो ! हिन्दुस्तान न बेचो।।

मिट्टी- सोना

पंकज जैन (अमेरिका)

मेरे वतन की स्मृति , मेरे वतन की मिट्टी है,
इस देश की पहचान , इस देश का सोना है।

वो मिट्टी बारिश की सोंधी मधुर महक है,
यह सोना तो बस बाहरी चमक है।

वो मिट्टी अमर ममता का ख़ज़ाना है,
यह सोना तो आज पाना और कल खोना है।

उस मिट्टी के गागर में सदियों का ज्ञान सागर है,
यह सोना तो मात्र भौतिक - सुख - रत्नाकर है।

उस मिट्टी के कण- कण से हमारा हर जन्म का रिश्ता है,इस धरती पर तो हर रिश्ता सोने से सस्ता है।

वो भूमि हर भाषा, हर धर्म , हर विद्या की मूल भूमि है,
यह भूमि भी हमारी मातृ- भूमि की खोज की निशानी है।

ग़ज़ल
(देश के हालात पर)

हम ने बाज़ार में यां[1] बिकता बशर[2] देखा है
कौल-ो दीं[3] का भी यहां मोल ज़र[4] देखा है ।
कत्ल करते भी हैं और फातह-ख्वानी[5] भी करें
ये तमाशा भी यहां शामो-सहर देखा है ।
कौन यह लोग हैं साकी किधर से आये हैं
इन की आंखों में अजब खौफो-खतर[6] देखा है ।
हैं ये आसार कज़ा[7]के या दुआओं का असर है
आज हम ने भी वो खुलता हुआ दर देखा है ।
बे हिसी[8] में जो कटा इक अपने से बिछड कर
राह में ज़ीस्त[9] की ऐसा भी सफर देखा है ।
किसी बे रहम की तस्वीर ही वहां पाई होगी
जिस किसी ने भी मेरा दीदाये तर[10] देखा है ।
और के दर्द पै तो रोता न मिला कोई "शैदा"
अपने ही दर्द में हर रोता बशर देखा है ।
और कोई सींचता गुज़रा है शजर[11] को "शैदा"
पर किसी और की झोली में समर[12] देखा है ।

महेश नन्दा "शैदा"
वाटरलू, कैनेडा

غزل
(مُلک کے حالات پر)

۱. ہم نے بازار میں یاں بِکتا بشر دیکھا ہے
قول و دیں کا بھی یہاں مول زر دیکھا ہے
۲. قتل کرتے بھی ہیں اور فاتحہ خوانی بھی کریں
یہ تماشا بھی یہاں شام و سحر دیکھا ہے
۳. کون یہ لوگ ہیں ساقی کِدھر سے آئے ہیں
اِنکی آنکھوں میں عجب خوف و خطر دیکھا ہے
۴. ہیں یہ آثار قضا کے یا دُعاؤں کا اثر ہے
آج ہم نے بھی وہ کھُلتا ہُوا در دیکھا ہے
۵. بے حِسی میں جو کٹا اک اپنے سے بچھڑ کر
راہ میں زیست کی ایسا بھی سفر دیکھا ہے
۶. کِسی بے رحم کی تصویر ہی واں پائی ہوگی
جِس کِسی نے بھی میرا دیدۂ تر دیکھا ہے
۷. اور کے درد پہ تو روتا نہ مِلا کوئی شیدا
درد میں اپنے ہی ہر روتا بشر دیکھا ہے
۸. اور کوئی سینچتا گزرا ہے شجر کو شیدا
پر کِسی اور کی جھولی میں ثمر دیکھا ہے

مہیش نندہ "شیدا"
واٹرلو۔ کینیڈا

---

(1) यहां (2) इन्सान (3) सौगन्द व धर्म (4) धन
(5) मरने वाले की तारीफ और प्रभू से प्रार्थिना
(6) भय और डर (7) मौत के चिन्ह (8) बेहोशी की हालत
(9) ज़िन्दगी (10) आंसू भरी आंखें (11) पेड
(12) फल

साक्षात्कार

लेखक अपने समय और समाज से कटकर कदापि नहीं रह सकता।

– सुभाष नीरव

"हिन्दी चेतना" के लिए हिंदी के वरिष्ठ कथाकार–कवि और अनुवादक सुभाष नीरव से डॉ. सुधा ओम ढींगरा की बातचीत

इंटरव्यू लेना मुझे आन्तरिक सुख देता है , इसी बहाने मैं अपने मनपसंद साहित्यकारों और प्रतिभाओं से बात कर लेती हूँ । उनके व्यक्तित्व को जानने, पहचानने और उनके कृतित्व को समझने का सुअवसर मिलता है। आज मैं आप को एक ऐसे कवि, कथाकार और अनुवादक से मिला रहीं हूँ जिनकी कहानियाँ मैं ढूँढ-ढूँढ़ कर पढ़ती हूँ। उनके साहित्य में आम आदमी की बात होती है। उनके अपने शब्दों में " लेखक अपने समय और समाज से कट कर कदापि नहीं रह सकता। "वेलफेयर बाबू" "औरत होने का गुनाह" "गोष्ठी" कहानियाँ मेरे अपने समय और समाज की कहानियाँ हैं और मैंने इन्हें लिख कर अपने सामाजिक सरोकार और लेखन के उद्देश्य को स्पष्ट करने की कोशिश की है। मुझे हमेशा लगता रहा कि लेखन ही एक ऐसा माध्यम है जो मेरी निजता को सामाजिकता में बदल सकता है। जिनके लिए मैं कुछ नहीं कर पाया, मैं उनके दुख-तकलीफों को अपने लेखन में रेखांकित कर सकता हूँ और उनके लिए 'कुछ न कर पाने' की अपनी पीड़ा को मैं लिखकर कम कर लेता हूँ। इसमें दो राय नहीं कि मेरे अब तक के लेखन के पीछे मेरे माता-पिता के संघर्ष और अभावों भरे दिन रहे हैं, मेरे अपने संघर्ष रहे हैं। लेकिन साथ ही साथ समय ने मुझे अपने समाज और परिवेश के प्रति भी जागरूक बनाया है। उस समाज में रह रहे हर गरीब, दुखी, असहाय, पीड़ित, दलित, शोषित व्यक्ति के प्रति संवेदनात्मक रिश्ता कायम किया है।"

"अपनी कहानियों, लघुकथाओं में मैंने सदैव कोशिश की कि इन लोगों के यथार्थ को ईमानदारी से स्पर्श कर सकूं और तहों के नीचे छिपे 'सत्य' को उदघाटित कर सकूं। मुझे नहीं मालूम कि मैं इसमें कहाँ तक सफल हुआ हूँ, पर मुझे अपने लिखे पर संतोष है। मुझे यह मुगालता कभी नहीं रहा कि मेरे लेखन से समाज में कोई परिवर्तन हो सकता है। कहानी, लघुकथा और कविता लिखते समय मैं अपने समय और समाज के प्रति जागरुक और ईमानदार रहूँ, ऐसी मेरी कोशिश और मंशा रहती है। आलोचक समीक्षक मेरी रचनाओं को लेकर क्या कहते हैं या क्या कहेंगे, इसकी तरफ मैं अधिक ध्यान नहीं देता। लिखना मेरा एक सामाजिक कार्य है और मैं इसे अपनी तरफ से पूरी ईमानदारी से करते रहना चाहता हूँ। यदि मेरी कोई रचना किसी की संवेदना को जगा पाती है अथवा उसे हल्का सा भी स्पर्श करती है तो यह भी कोई कम उपलब्धि नहीं है मेरे लिए।"

मुरादनगर (उत्तर प्रदेश) में जन्में, मेरठ विश्वविद्यालय से स्नातक, अनियत कालीन पत्रिका 'प्रयास' और मासिक 'मचान' के संपादक सुभाष नीरव की उपरोक्त पंक्तियाँ जब मैंने पढ़ीं तो 'हिंदी चेतना' के लिए बातचीत की अपनी इच्छा को रोक नहीं पाई। फ़ोन किया तो एक गंभीर आवाज़ ने स्वीकृति दी और बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया। आपकी कृतियाँ हैं: 'यत्किंचित', 'रोशनी की लकीर' (कविता संग्रह), 'दैत्य तथा अन्य कहानियाँ', 'औरत होने का गुनाह', 'आखिरी पड़ाव का दुःख', (कहानी संग्रह) , 'कथा बिन्दु' (लघु कथा संग्रह), 'मेहनत की रोटी' (बालकहानी संग्रह) । लगभग १२ पुस्तकों का पंजाबी से हिंदी में अनुवाद , जिनमे "काला दौर", कथा –पंजाब –२" कुलवंत सिंह विर्क की चुनिंदा पंजाबी कहानियाँ" , " पंजाबी की चर्चित लघु कथायें", " तुम नहीं समझ सकते" (जिन्दर का कहानी संग्रह), " छाँग्या रुक्ख" (बलबीर माधोपुरी की दलित आत्म कथा) और "रेत"(हरजीत अटवाल का उपन्यास) प्रमुख हैं।

प्रस्तुत है उनसे हुई बात चीत---

सुधा ओम ढींगरा – सृजन की ओर उन्मुख होने के वे कौन से प्रारंभिक प्रेरणा स्त्रोत थे जिन्होंने आप–को एक साहित्यकार बनाया ?

सुभाष नीरव - सन् 1971-72 की बात है जब मैं मोदी इंटर कॉलेज, मोदी नगर से इंटर कर रहा था। इस कॉलेज के पुस्तकालय में बहुत सी साहित्यिक पत्रिकाएँ आती थीं जैसे कल्पना, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, नीहारिका, सरिता व मुक्ता आदि। साहित्य के प्रति मेरे अनुराग का पहला प्रस्फुटन यहीं हुआ। इनमें प्रकाशित साहित्य जैसे कहानियाँ, कविताएँ और धारावाहिक उपन्यास मुझे अपनी ओर खींचने लगे थे। लेकिन लिखने की बात तब तक मेरे मन में नहीं आई थी। यह तो जब इंटर करने बाद मुझे अपनी पारिवारिक परिस्थितियों के कारण आगे की पढ़ाई रोकनी पड़ी और दो वर्ष लगातार बेकारी के दंश को मुझे झेलना पड़ा, उस दौरान मैं अपने अकेले पन और पीड़ा को तुकबंदियाँ करके भुलाने की कोशिश करने लगा था। पर जैसे-जैसे अच्छे साहित्य-पठन की ओर मैं उन्मुख होता गया, मेरे भीतर भी एक साहित्यकार बनने की ललक उत्पन्न होने लगी। उस दौर की कथा-कहानियों में जब मैं लोगों के दु:ख-तकलीफों को देखता तो मुझे अपना परिवार याद आने लगता। अपनी दु:ख-तकलीफें याद आने लगतीं। शुरूआती लेखन मैंने अपने और अपने परिवार को केन्द्र में रख कर ही किया। समाज और समाज के लोगों से तो बाद में जुड़ा। अगर मैं यह कहूँ कि मेरे लेखन का प्रेरणा स्रोत अभावों में जीता मेरा अपना परिवार रहा है तो गलत न होगा।

लेखन को लेकर कुछ परिकल्पनाएँ होंगी। क्या वे पूरी हुईं ?

नहीं, कुछ खास परिकल्पनाएँ मैंने नहीं की थीं। बस, जो कुछ भी लिखूँ, बेहतर लिखूँ, कम लिखूँ पर अच्छा लिखूँ यही आरंभ से अब तक मेरी मंशा रही है। कहानी, कविता, लघुकथा आदि साहित्य की मेरी प्रिय विधायें रही हैं, अभी तक इन्हीं में लेखन करता रहा हूँ, उपन्यास लिखने को बहुत मन करता है, पर उसके लिए जो धैर्य और साहस की आवश्यकता होती है, वह मुझमें शायद नहीं है। फिर भी, आत्मकथात्मक उपन्यास लिखने की चाहत है, देखो कब पूरी होती है। हाँ, लेखन में अगर मेरे अनुवाद को भी आप शामिल करें तो उसे लेकर मेरे मन में शुरू से कुछ परिकल्पनाएं रही हैं। जिस समय मैंने पंजाबी साहित्य से हिंदी में अनुवाद करना आरम्भ किया था, उस समय पंजाबी के कुछ चार-पाँच प्रमुख लेखकों व कवियों के साहित्य का ही हिंदी में अनुवाद होता था। बहुत सा अच्छा और उत्कृष्ट पंजाबी साहित्य हिंदी में अनुवाद होकर नहीं आ रहा था। मेरे मन में एक परिकल्पना थी कि मैं पंजाबी के ऐसे साहित्य को हिंदी पाठकों के सम्मुख लाऊँ जो सही मायने में पंजाबी के श्रेष्ठ और उत्कृष्ट -साहित्य का प्रतिनिधित्व करे। और मैंने अपनी इस परिकल्पना को बहुत हद तक साकार भी किया है।

लेखक को मौलिकता के साथ परिवेश, हालात और परिस्थितियाँ निखारती हैं या सिर्फ नैसर्गिक प्रतिभा ही काम करती है।

नैसर्गिक प्रतिभा अगर किसी लेखक को जन्मजात ही मिल जाए तो फिर बात ही क्या है ! पर मेरा अपना मानना है कि जो लेखक अपने समय और समाज से नहीं जुड़ता, वह अच्छा लेखन कर ही नहीं सकता। किसी भी लेखक की रचनात्मकता को मौलिकता तो निखारती ही है, उसका अपना परिवेश, हालात, परिस्थितियाँ भी इसमें बहुत मददगार साबित होती हैं।

डॉ. अशोक चक्रधर के साथ सुभाष नीरव

अब तक का सफर कैसा रहा ?

अगर आपके प्रश्न का आशय मेरे लेखकीय सफर से है तो कहूँगा, बहुत अच्छा नहीं रहा। साहित्य में गुटबाजी, ओछी राजनीति के चलते बहुत कड़वाहट भरा सफर रहा है। पर मैं अपने कर्म के प्रति वफादार रहना चाहता रहा हूँ और लेखन को एक सामाजिक कार्य के रूप में लेता रहा हूँ। कम लिखता हूँ पर जो लिखा है, उस पर मुझे संतोष है।

आधुनिक तकनीकी प्रसाधनों ने सभी को प्रभावित किया है। आपके भी अंतर्जाल पर कई चिट्ठे हैं। क्या इससे साहित्य को नई उपलब्धियाँ हो रही हैं ? प्रकाशित साहित्य इसकी लपेट में नहीं आ जाएगा ?

मनुष्य का बदलते समय के साथ बदलना ज़रूरी मानता हूँ। हमारा यह समय बहुत तेजी से बदला है। संचार क्रांति के चलते बहुत सी नई तकनीकें हमारे सामने आई हैं,

जिनका उपयोग अगर हम नहीं करेंगे तो पिछड़ जाएंगे। संचार माध्यमों में हो रहे निरंतर विकास के चलते हमारे बीच की भौगोलिक दूरियाँ कम हो गई हैं। हम एक दूसरे की पहुँच में आ गए हैं। कोई भी विकास शत प्रतिशत लाभदायक नहीं हुआ करता। इसके गुण हैं तो अवगुण भी। ज़रूरत बस इतनी है कि आप इसके गुणों को अपनायें। नेट ने अभिव्यक्ति के नये रास्ते खोले हैं। अभिव्यक्ति का यह नया माध्यम आज खूब पसंद किया जा रहा है। लेखक, कवि, पत्रकार अंतर्जाल पर ब्लाग और वेब पत्रिकाओं से जुड़ रहे हैं। जहाँ प्रिंट मीडिया लोगों तक नहीं पहुँच पाता, वहाँ नेट द्वारा आपकी रचनाएं एक क्लिक भर की दूरी पर सिमट गई हैं। यह सस्ता और सुलभ माध्यम भी है। आप देखें , किसी पत्रिका या किताब को आज डाक से देश विदेश में भेजना कितना महंगा और दुष्कर कार्य हो गया है। ऐसे में अगर साहित्य नेट द्वारा दूर दराज बैठे लोगों तक सहजता और सरलता से पहुँच रहा है तो इसे अपनाने में क्या हर्ज है। जिस समय मैंने अपने ब्लॉग आरंभ किए थे, हिन्दी में इनकी संख्या बहुत कम थी। आज दस हजार से ऊपर का आंकड़ा छूने जा रहे हैं। जो लोग यह कहते हैं कि ब्लॉग या वेब पत्रिकाओं में अच्छा साहित्य नहीं होता, वे गलत कहते हैं। क्या हिन्दी की सभी पत्र पत्रिकाओं में अच्छा और श्रेष्ठ साहित्य ही छपता है ? अखबारों से तो साहित्य वैसे ही गायब होता जा रहा है। जो गिनी चुनी साहित्यिक पत्रिकाएं हैं भी, वे अपनी मनमानी के चलते जो साहित्य पाठकों को परोस रही हैं, उसमें कितना श्रेष्ठ है, यह गौर करने की बात है। हमें यह भी देखना चाहिए कि नेट पर ब्लॉग या वेब साइट्स की वजह से लोगों में हिन्दी के प्रति रूझान बढ़ा है। इसके माध्यम से हिन्दी का विकास हो रहा है। हिन्दी विश्व के कोने कोने में पहुँच रही है।

मेरा पूरा विश्वास है कि आने वाले समय में नेट पर साहित्य को लेकर हमें नई उपलब्धियाँ देखने को मिलेंगी। जहाँ तक इसकी लपेट में प्रकाशित साहित्य के आने की बात है, मैं इससे सहमत नहीं हूँ। प्रकाशित साहित्य को इससे कोई खतरा नहीं है। जब घर घर में टी.वी. आया था या जब टी.वी. पर चैनलों की भरमार होनी शुरू हुई थी, तब यह बात उठी थी कि अब तो फिल्मों का वर्चस्व गया। पर क्या ऐसा हुआ ? नहीं, आज भी फिल्मों का निर्माण बहुत बड़ी संख्या में हो रहा है और उन्हें देखने के लिए लोग नई तकनीक से बनाये गए पी वी आर, मल्टीपैलेक्स सिनेमाघरों में जाते हैं। प्रकाशित साहित्य जिंदा है, जिंदा रहेगा परन्तु अंतर्जाल द्वारा वह अपनी पहुँच की सीमाएं अवश्य तोड़ेगा और देश - विदेश में सभी को सर्वसुलभ होगा।

इनके चिट्ठे हैं –

ब्लॉग्सः
सेतु साहित्य (उत्कृष्ट अनूदित साहित्य की नेट पत्रिका)
वाटिका (समकालीन कविताओं की ब्लाग पत्रिका)
साहित्य सृजन (साहित्य , विचार संस्कृति का संवाहक)
शवाक्ष (हिंदी – पंजाबी के समकालीन प्रवासी साहित्य की प्रस्तुति)

'इन्सान'

राज शर्मा (कैनेडा)

मुझे ग़म है - जिसे भुलाया नहीं जा सकता,
मुझे घाव है - जिसे सहलाया नहीं जा सकता,
मुझे दर्द है - जिसे सहा नहीं जा सकता,
यह यथार्थ है- जिसे झुठलाया नहीं जा सकता,
काश - कि मैं इंसान न होता ।

'आँख'

जिस आँख में लाज का नूर नहीं, उसे आँख कौन कहेगा?
जिस आन में बलिदान की महक नहीं, उसे आन कौन कहेगा?
जिस दिल में राष्ट्र की तड़प नहीं, उसे गिरेवाँ कौन कहेगा?
वक़्त के आह्वान को जो न समझे, उसे इंसान कौन कहेगा?

'फूल'

आयेगा वक्त कि खारों में भी फ़ूल खिलेंगे,
मनसिज की हूक पै सत्यम्- शिवम् के तराने बनेंगे,
कागद पै स्याही के धब्बे घट - घट के अफसाने बनेंगे,
वर्तमान के प्रकाश - स्तम्भ संस्कृति के अनुचर बनेंगे।

विलोम चित्रकाव्यमाला

क्रमांक २

चित्रकारः अरविन्द नारले
कविः सुरेन्द्र पाठक

एक दूजे के सदा से पूरक, लिखने वाला, पढ़ने वाला
लिखने वाला यदि ना पढता, कैसे करता कागज काला?
लिखने बैठी एक लेखिका, हुई रात तो दिया जलाकर
अब फुरसत है पाई इसने, दिनचर्या ये समय बचाकर
लिखते लिखते थक गई है, कलम रोक कर ली जंमाई
अभी अभी तो मै बैठी हूं, इतनी जल्दी नींद है आयी?
लिखते लिखते रुक गई है, कर बैठी है कोई गल्ती
मुंहसे उफ! निकल पड़ा है, कुछ लिखने में कर दी जल्दी
शान्त वातावरण जहां हो, लेखक का वह प्रिय स्थान
वहीं एकाग्र मन होता है, एकाग्र मन से उपजे ग्यान

समाज में जितने अच्छे लेखक, उतनी उन्नति करे समाज
वो तो हैं उस सीढ़ी के डंडे, हम जिस डंडे पर बैठे आज

लिखनेवाली लिख जाएगी, इस पीढ़ी को कुछ तो ग्यान
अगली पीढ़ी को ये बच्ची, दे जाएगी विद्यादान!

इक पार्क में बेंच पे बैठी, पढ़ रही एक छोटी बच्ची
इतनी मगन हुई पढने में, शायद पुस्तक है बड़ी अच्छी
बच्ची देख है लगती सच्ची, बडे बुजरुगों की ये बात
कि होनहार के शुरु से होते चिकने चिकने पात

समाज का हर हृदय स्पर्शी दृश्य या परिवेश उनकी काव्य प्रेरणा है ।

संदीप त्यागी

उत्तर प्रदेश के गाँव सिसौना में 18 सितम्बर सन् 1977 में जन्मे संदीप त्यागी एक कवि हैं और कनाडा में विगत दस वर्षों से स्वातंत्र्य -योग के प्रचार -प्रसार में लीन हैं। एक अनौपचारिक बातचीत में उन्होंने हमारे प्रतिनिधि के प्रश्नों का समाधान किया। हमारे प्रतिनिधि के पूछे जाने पर कि आप को लिखने की प्रेरणा कब और कहाँ से मिली ? तो उन्होंने बताया कि यों तो उनके परिवार की शिक्षा के आधार स्तम्भ श्री हरिसंह त्यागी जी हैं। जिनके बेजोड़ काव्य संग्रह “हरीतिमा” की काफी कविताएँ उन्हें कंठस्थ हैं, लेकिन बड़े भाई सुशील जी को उनकी सुंदर कविताओं, गीतों और ग़ज़लों पर सभी से मिली वाहवाही ने ही उन्हें प्रेरित किया कि कुछ उनके जैसा बनें । उन्होंने सुशील जी को अपना प्रेरक मानकर कक्षा आठ में पहली बार कुछ शब्द संयोजन का प्रयत्न किया किन्तु उनकी कविता का प्रतिष्ठित स्तर देखकर शर्म और संकोच से अपनी जोड़-तोड़ को किसी को भी दिखाने के लायक न समझ कर नष्ट कर दिया । किन्तु मन ही मन ठान लिया कि एक दिन सबसे बढ़िया कविता लिखनी ही है। साथ ही विचार किया कि भाई साहब तो हिंदी में लिखते हैं लेकिन वे संस्कृत में लिखेंगे जिससे कोई भी उन्हें उनका प्रतिस्पर्धी या नकलची नहीं समझेगा। सबसे बढ़िया कविता लिखने की यही भावना उन्हें रात -दिन जगाये रखती थी। गुरुकुल में पढ़ते हुए इस प्रकार चार साल तक वे प्रतीक्षा करते रहे लेकिन लाख प्रयास करने पर भी कुछ शब्द जुड़ा नहीं सके।

एक दिन अनायास शाम को भूख न लगने की प्रतीति सी हुई जो उन जैसा भोजन प्रिय विद्यार्थी के जीवन की प्रथम अपिरिचित अनुभूति थी, उन्हें अच्छी तरह याद है उससे पहले उन्होंने कभी भी एक दिन तो क्या एक वक्त तक का भोजन व्रत या उपवास के बहाने तक से भी नहीं गँवाया था। उन्हें ठीक -ठीक याद है सन् 1993ई के दिसम्बर मास की वो 31तारीख थी। कागज़ कलम लेकर वे बैठ गए और कुछ लिखने लगे। रात भर यही सिलसिला चलता रहा। सुबह लगभग 3 बजे ध्यान आया कि प्रात:4:30 बजे उठना भी तो है। क्योंकि गुरुकुल में प्रातः 4:30 बजे सभी को उठकर दिनचर्या शुरु करनी होती है। इसमें विलम्ब होने की तो गुंजाइश ही नामुमकिन है। खैर सुबह उठने पर रात में लिखे चार संस्कृत श्लोक पंचचामर छ्न्द में उन्होंने अपने बाबा जी को दिखाए इन श्लोकों में से पहले दो श्लोक सरस्वती-वंदना तथा अन्य दो श्लोक तत्कालीन मुम्बई कांड की विषय वस्तु को

उपादान बनाकर लिखे गये थे। बाबा जी के मार्ग दर्शन और आशीर्वाद मिलने के बाद वे अपने बड़े भाई सुशील जी के सुझाव पर हिंदी संस्कृत साहित्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र, डॉ. सत्य व्रत शर्मा "अजेय" जी के पास अपनी रचना लेकर गए । छंद आदि की दृष्टि से उन्होंने उन्हें कुछ निर्देश दिए । और समस्यापूर्ति के लिए निम्न पंक्ति देते हुए कहा.... संदीप

"भाव के अभाव में काव्य कला व्यर्थ है।"

पंक्ति में अगली पंक्ति जोड़ो!

और अनायास उनके मुख से निकल पड़ा.....

'भाव के प्रभाव से ही कविता समर्थ है।'

इस प्रकार ज्येष्ठ भ्राता सुशील जी का सानिध्य तथा उनके दोनों काव्यगुरुओं का प्रेरक निर्देशन ही उनकी आदि प्रेरणा है । जहाँ तक आजकल की बात है समाज का हर हृदयस्पर्शी दृश्य या परिवेश उनकी काव्य प्रेरणा है।

कविता में ही क्यों रूचि रही ? पूछने पर उन्होंने बताया कि संगीतज्ञ होने से ! तथा कविता गाये जाने योग्य होने से उन्हें रुचिकर लगती है, तथा बिना किसी बौद्धिक व्यायाम किये बगैर उद्‌भूत होने से कविता को वे एक परा मानवीय प्रक्रिया मानतें हैं। गद्यगीत या गद्यात्मक पद्य उन्हें यदि भाव की दृष्टि से सशक्त हो तब तो प्रिय है। लेकिन पाठकों या श्रोतायों को तो क्या जो रचना स्वयं रचियताओं को भी कण्ठस्थ नहीं होती है, ऐसी गद्य कविता के प्रति उनका आकषर्ण विशेष नहीं हो सका है।

वीर रस से क्यों अनुराग है ? उन्होंने बताया कि वीर रस उन्हें अपने स्वभाव के सबसे ज्यादा निकट प्रतीत होता है । घुट्टी में रामायण महाभारत आदि की कथाओं का रस पीने के कारण वीर रस रक्त बनकर शिरा और धमनिओं में दौड़ता है। बचपन से गुरुकुल में "वीर भोग्या वसुंधरा" "अस्माकं वीराः उत्तरे भवंतु पढ़ा है"। साहित्य , संगीत व दशर्न के साथ ही इतिहास प्रिय विषय रहा है। इतिहास के गहन अध्ययन से भारतीय वीरों के शौर्यपूर्ण संघर्ष की गाथाओं की मुहर्मुहु-आवृत्ति ने उनकी चेतना तंत्र में भी संघर्षण उत्पन्न कर एक बिजली सी कौंधा दी। किशोरावस्था में उनके द्वारा लिखा कान्तिकाव्य ''चंदर शेखर आज़ाद शतक" उनकी इसी भावना की अभिव्यक्ति है। वैसे भी आजकाल का असुरिक्षत माहौल वीर रस के काव्यों से ही बदला जा सकता है। वीर रस की रचनाएं ही हैं जो कायरों में शौर्य का संचार कर सकती हैं।

हिंदी के किन कविओं ने उनकों प्रभावित किया ? इसके उत्तर में उन्होंने बताया कि हिन्दी के कविओं में आधुनिक भारत के प्रथम राष्ट्रकवि भूषण उनकी पहली पसंद हैं। घनाक्षरी छंद में वीर रस का जो अद्भुत परिपाक '' शिवा बावनी' में हुआ है। सदैव अद्वतीय रहेगा। स्वतंत्र भारत के राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर " गुप्त बंधु, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशंकर प्रसाद जैसे साहित्यकारों की प्रतिभा से वे सदैव अभिभूत रहें हैं।

कनाडा में हिंदी से उनका किस प्रकार मिलाप हुआ ? 30 मई 1999 को कनाडा की धरती पर आकर वे हिंदी की गतिविधियों से बिल्कुल अलग -थलग सा पड़ गये थे। लेकिन आदरणीय श्री यश दत्ता जी के माध्यम से वे 'हिन्दी चेतना' के प्रधान संपादक , साहित्य समाज में समादृत , सौम्य संत से शांत श्री श्याम त्रिपाठी जी से मिले। जिनके सम्पर्क से कनाडा के सभी हिन्दी साहित्यकारों के सम्पर्क की मास्टर कुँजी मिल गई।

कोई लेखक या कवि उनसे अपरिचित न रहा ।

हिन्दी चेतना द्वारा प्रकाशित

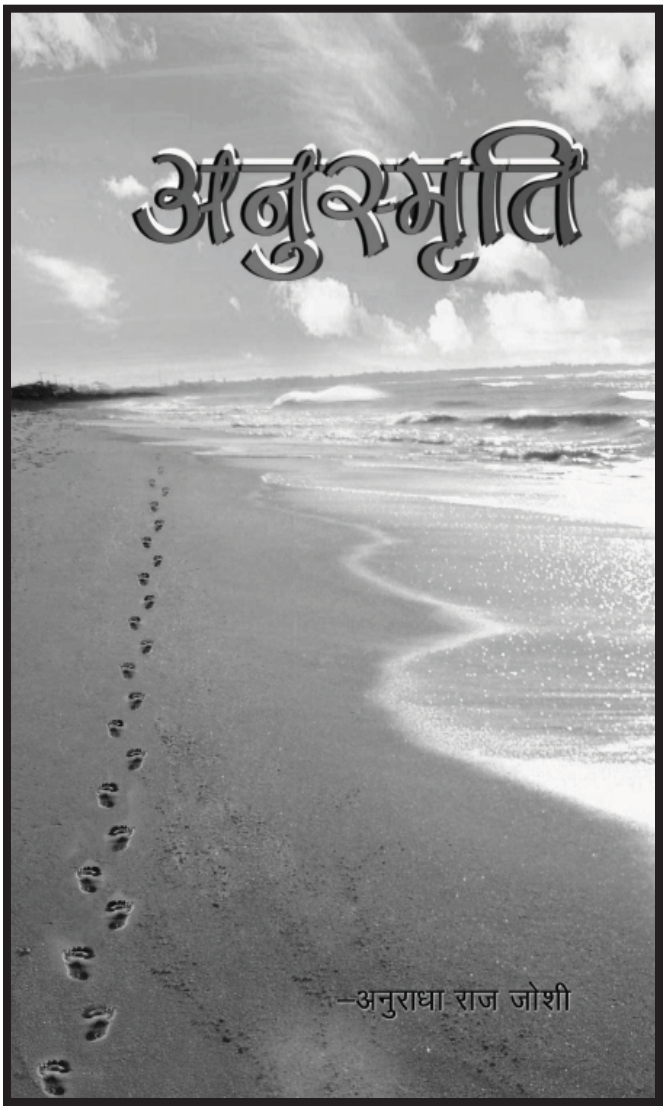

व्यंग्य

ज्यों–ज्यों बढ़े श्याम रंग

प्रेम जनमेजय (भारत)

गर्मियों के इतवार की अलसाई सुबह का समय था और चढ़ती धूप, मक्खियों की भिन्न-भिन्न तथा चिड़ियों की चांय चांय मेरे जैसे अलसाए लोगों को वैसे ही बेचैन कर रही थी जैसे बढ़ती हुई मुद्रास्फीति की दर से आजकल भारत सरकार बेचैन है । सामने चुनाव की गर्मी-सा लंबा दिन था और उस दिन में कहीं अंधेरा भी दिखाई दे रहा था । ऐसे अंधेरे में किसी गलतफहमी-सा धार्मिक प्रवचन, बहुत सकून देता है । ऐसी ही अलसाई सुबह मेरी पत्नी धार्मिक चैनल देख रही थी और जैसे हाई कमान की बात को न चाहते हुए भी देखना-सुनना पड़ता है वैसे ही मुझे देखना - सुनना पड़ रहा था। प्रवचनकर्ता बाबाजी ऊंचे से आसन पर बैठे अपने सामने, नीचे, जमीन पर बैठे भक्तों को समझा रहे थे कि इस संसार में सभी जीव बराबर हैं । जैसे मेरी सरकार लोगों की धार्मिक भावनाओं का ख्याल रखती है, उसमें हस्तक्षेप नहीं करती है वैसे ही मैं भी अपनी पत्नी की धार्मिक भावनाओं का ख्याल रखता हूँ। पर इधर मैं देख रहा हूँ कि पत्नी मेरी भावनाओं का कम और बाबाजी की भावनाओं की अधिक कद्र कर रही है। इसी कद्र के चक्कर में बाबाजी का आसन ऊँचा होता जा रहा है और हमारे जैसे भक्तों का नीचे। हमारी बूँद-बूँद श्रद्धा से उनका सागर भर रहा है । अपने हर प्रवचन में वो दान की महिमा समझाते हैं एवं भगत भक्तिभाव से समझते हैं और भक्तों की इसी समझ का परिणाम है कि आश्रम फल-फूल रहा है और अनेक फूल-सी बालाएं उसकी शोभा बढ़ा रही हैं। ये दीगर बात है कि बाबाजी अपने आश्रम द्वारा तैयार किए गए आर्युवैदिक उत्पादों को दान में नहीं देते हैं, उन बहुमूल्य वस्तुओं का मूल्य लेते हैं । जैसे-जैसे भगतों की संख्या बढ़ रही है, दान-कोष बढ़ रहा है और बहुमूल्य वस्तुओं के दाम बहुमूल्य हो रहे हैं । बाबाजी को प्रवचनों से फुरसत नहीं मिल रही है । भगतजनों ने थैलियों के मुंह खोल दिए हैं । एक-एक सतसंग की लाखों रुपयों में बोली लग रही है ।

बाबाजी बता रहे हैं-- इस श्याम के रंग को कोई नहीं समझ सकता है । आप जैसे - जैसे इसके रंग में डूबते हैं वैसे -वैसे उजले होते जाते हैं।' वे सोदाहरण समझा रहे थे कि उनके दरबार में अनेक श्यामवर्णी आए और उजले हो गए । आजकल बाबाजी की पहुँच बढ़ गई है और वे श्याम रंग में डूबे लोगों को उजला करने का परमार्थी- व्यवसाय कर हरे हैं । वो श्याम रंग में डूबे लोगों को उकसा रहे थे कि वे उनकी शरण में आएं और समाज में उजले होने का सम्मान प्राप्त करें । बाबाजी श्याम रंग में डूबे हुए भगतों को निर्भय कर रहे थे कि बाबाजी के होते वे निडर रहें और दान-दक्षिणा में अपनी श्रद्धा बनाए रखे । जितना वो दान-दक्षिणा में श्रद्धा रखेंगें उतने ही निर्भय हो सकेंगे। बिना हनुमान चालीसा का पाठ किए, भूत पिशाच उनके निकट नहीं आवेंगे। वैसे जब आप ही उजले भूत- पिशाच हो जाएं तो कौन आपके सामने आने का साहस करेगा।

ऐसी अलसाई सुबह और बाबाजी के प्रवचनों के बीच उन्होने मेरी घंटी बजा दी । मैंनें दरवाजा खोला तो सामने उनको पाकर भयभीत मन मौन-भजन करने लगा -- भूत पिशाच निकट नहीं आवें , महावीर जब नाम सुनावें ।' उस दिन न तो मंगलवार था, न ही मेरे सामने कोई रामभक्त या हनुमान भक्त खड़ा था और ना ही मैं पत्नी को दिखाने के लिए धार्मिक बना हुआ था। हमारे जनसेवक तो चुनाव के समय जनता के सामने धार्मिक हो जाते हैं मैं तो मात्र पत्नी के सामने होता हूं । मेरे सामने पुलिस-विभाग के 'कुशल' कर्मचारी और मेरे परम् 'मित्र' खड़े थे । मन ने मुझे चेताते हुए कहा, हे प्यारे सत्यवान, सावित्री को समाचार दे दे कि वह अपने सभी पतिव्रत गुणों को लॉकर से निकाल ले क्योंकि उसके सत्यवान पर संकट की आशंका है । संतो ने कहा भी है कि पुलिसवालों की न तो दुश्मनी अच्छी और न ही दोस्ती अच्छी, इनसे दूरी ही अच्छी । उनके हाथ में पकड़ा मिठाई का डिब्बा लगातार चेतावनी दे रहा था कि प्यारे मुझे खा मत जाना वरना एक के चार चुकाने पड़ेंगे । उनके चेहरे पर खिली हुई प्रसन्नता ऐसी थी जैसी किसी वकील या पुलिसवाले को एक अमीर द्वारा किए गए कत्ल का केस मिलने पर होती है । वे वर्दी के बिना ऐसे लग रहे थे जैसे चुनाव के समय वोट-याचना करता नेता, सीता का अपहरण करता हुआ रावण अथवा मुंह में राम और बगल में छुरी रखने वाला धार्मिक। उन्हें सामने देख पत्नी ने अपना धार्मिक कर्म स्विच ऑफ किया और भाई साहब के लिए चाय बनाने अंदर चली गई। मुझे देखते ही वो गले मिले और उनकी इस आत्मीयता से घबराकर मैंनें अपने पर्स को कसकर पकड़ लिया। मैं दूध का जला था और जानता था कि उनकी आत्मीयता की कीमत होती है जिसे वो किसी न किसी रूप में वसूल ही लेते हैं । वो सीधी, टेढ़ी, आड़ी-तिरछी सब प्रकार की अंगुलियों से घी निकालने में माहिर हैं । गले मिलने के बाद और उस मिलने से कुछ भी न मिलने के कारण मेरे इस मित्र ने बहुत जल्दी गले मिलो कार्य सम्पन्न कर लिया और शीघ्र ही मुद्दे पर आते हुए बोले-- प्रेम भाई आज बहुत अच्छा दिन है, आज मेरा तबादला हो गया है, लो मिठाई खाओ । मैंनें लोगों को तबादले से परेशान होते ही देखा है, पर मेरा मित्र तो प्रसन्न हो रहा था, जरूर दाल काली है । बधाई हो, कहाँ हो गया तबादला ?

'-- वहीं जहाँ जवानी में मैं जाकर मजे करता था और तू शर्म के मारे मुँह छिपाता था। वहीं जहाँ तेरे मन में तो लड्डू फूटते थे पर नैतिकता का मारा उनको चखता नहीं था। तू डरता था कि जवानी में तेरे कदम फिसल गए तो इन चक्करों में पढ़-लिख नहीं पाएगा और अच्छी नौकरी नहीं मिलेगी ।
' इसके बाद उसने आँख मारते हुए कहा,' औरतों की मँडी में । अब तो दोनों हाथों में लड्डू होंगे ।
"-- पर अभी तो आप बड़े ही पॉश इलाके में थे, दक्षिण दिल्ली के इज्जतदार इलाके में ।" - इज्जतदार घंटु...'
कहकर वो थोड़ी देर रुका और बोला,' पता नहीं क्यों तेरी सोहबत में आते ही दिमाग के घोड़े दौड़ने लगते हैं... सच कह रहा तू इलाका साला इज्जतदार ही है, बड़ी इज्जत से जुर्म होता है, बड़ी इज्जत से स्थित मिलती है,इज्जतदार घर की इज्जतदार औरतें जिस इज्जत के साथ इज्जत का जनाजा निकालती हैं... पर अपन को इतनी इज्जत की आदत नहीं है। साला डर ही लगा रहता है कि जिस साले से माल ले रहे हैं कहीं उस इज्जतदार की पहुंच ऊपर तक न हो और अपना स्टिंग ऑपरेशन ही न हो जाए । इज्जतदार इलाके में रिस्क ज्यादा है ।
" पर औरतों की मँडी तो बहुत बदनाम जगह है... वहाँ क्या मिलेगा, नीचे गिरे लोग, बदनामी ही न...प्यारे, जहाँ जितने नीचे - गिरे लोग होंगे वहां उतना ही ऊपर का माल बनेगा न ।"समुद्र में भी जितने नीचे जाओ उतने ही रत्न मिलते है न... काले कोयले की खानों में ही तो हीरा मिलता है... अबे शरीफों के मोहल्ले में क्या मिलेगा, मैडल, साले जिसे बाजार में भी नहीं बेच सकते हैं, बेचने जाओ तो लोग टोकते हैं, क्यों, अपना सम्मान बेच रहे हो ? प्यारे बड़ी मुश्किल से ले-देकर ये ट्रांसफर करवाया है । जानता है इस थाने में ट्रांसफर का क्या रेट चल रहा है...

"रहने दो मित्र क्यों अपना ट्रेड पोइंट बताते हो ।"-- पर तुम तो ट्रेड शुरु कर दो । तुम्हारे इलाके का एस. एच.ओ.अपना दोस्त है । मजे से पेपर लीक करो,तुम पर आंच नहीं आएगी । खाओ और खाने दो के सिद्धांत पर चलो जैसे तुम्हारा मित्र चोपड़ा चल रहा है ।

जानते हो कितनी इज्जत है उसकी। आई .ए.यस, बड़े-बड़े बिजनेस मैन, सांसद, एम. एल. ए. -- कौन-कौन नहीं उसके दरवाजे पर आता है। सबको अपने बच्चों के बढ़िया नम्बर चाहिए होते हैं और बच्चे तो देश का भविष्य होते हैं तथा ऐसे में भविष्य कम नम्बर वाले बच्चों का हो गया तो देश का क्या होगा । कितनी बड़ी देश सेवा कर रहा है चोपड़ा और इसके बदले में उसे पैसे का पैसा मिल रहा है और इज्जत की इज्जत । तुम्हें क्या मिल रहा है ?"

-- मुझे ..
-- लटके रहो नैतिकता की इन सूईयों को पकड़ कर । पालते रहो अपने उजले होने का भ्रम । प्यारे आजकल उजला वही है जो श्याम के रंग में डूबा है । आजकल उजला होना महत्वपूर्ण नहीं है उजला दिखना महत्वपूर्ण है । यह कहकर मुझे चिकना घड़ा मान वो देश सेवा के उच्च विचार धारण किए आगे बढ़ गया ।
शायद सच ही कहा उसने-- आजकल उजला वही है जो श्याम के रंग में डूबा है और जितना डूब रहा उतना ही उजला हो रहा है । उजला होने से अधिक उजला दिखना महत्वपूर्ण है ।

तथास्तु ।

संस्मरण

कमलेश्वर जी से मेरी मुलाकात

रूपसिंह चंदेल (भारत)

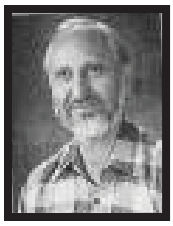

कमलेश्वर जी से मेरी मुलाकात तब हुई जब वह "गंगा" के सम्पादक थे। मैंने 'गंगा' में कोई कहानी भेजी थी। कई महीने बीतने के बाद भी जब वहां से कोई उत्तर नहीं मिला, मैं कमलेश्वर जी से मिलने जा पँहुचा। मेरे मस्तिष्क में उनके व्यक्तित्व का जो स्वरूप बना हुआ था उसके कारण लंबे समय तक मैं 'मिलूं न मिलूं' के उहापोह में रहा था, जबकि कई मित्रों से उनकी उदारता, सरलता, और सहृदयता के विषय में सुन चुका था। उससे पहले मैंने पत्र लिखकर कहानी के विषय में जानना चाहा, लेकिन कोई उत्तर नही मिला। कुछ सप्ताह और बीते। आखिर एक दिन अपरान्ह में जा पहुंचा 'गंगा' के कार्यालय। एक सज्जन से पूछा। उन्होंने कमलेश्वर जी के कमरे की ओर इशारा कर कहा, "बैठे हैं।"

ससंकोच मैंने कमरे में झांका. दरवाज़ा पूरी तरह खुला हुआ था। दरवाजे के ठीक सामने कमलेश्वर जी बैठे लिख रहे थे।

"सर, मैं रूपसिंह चन्देल." दरवाज़े पर ठहर मैं बोला।

"अरे जी आइये, चन्देल जी।" लिखना रोक कमलेश्वर जी बोले और सामने पड़ी कुर्सी की ओर इशारा किया, "बैठिये। बस एक मिनट" वह पुन: लिखने लगे थे।

वास्तव में उन्होंने एक मिनट ही लिया था। या तो वह आलेख का अंतिम वाक्य लिख रहे थे या वाक्य पूरा कर मुझसे बात करने के लिए आलेख बीच में ही छोड़ दिया था।

मैंने अपने आने का अभिप्राय बताया।

"कहानी होगी मैं उसे देख लूंगा। आप फिक्र न करें।" कमलेश्वर जी ने पूछा "और क्या लिख रहे हैं?"

"कुछ लघुकथाएं (लघु कहानियां) और बाल कहानियां।"

"लघुकथाएं भेजिये । आपने देखा होगा, गंगा में हम लघु कथाएं भी छापते हैं।"

कमलेश्वर जी से उस पन्द्रह मिनट की मुलाकात में मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। कहानी तो 'गंगा' में प्रकाशित नहीं हुई, लेकिन बंद होने से पहले मेरी एक लघुकथा अवश्य प्रकाशित हुई थी।

उस मुलाकात के बाद लंबे समय तक मैं उनसे नहीं मिला। 1992 या 1993 में उनके एक कहानी संग्रह पर मैंने 'जनसत्ता' के लिए समीक्षा लिखी, जिसके प्रकाशित होने पर उसकी फोटो प्रति मैंने उन्हें भेजी। खूबसूरत हस्तलेख में कमलेश्वर जी का पत्र मिला। लिखा था, "आप एक अच्छे कहानीकार हैं । मेरी सलाह है कि समीक्षा लिखने से अपने को बचाएं।"

कमलेश्वर जी की सलाह उचित थी। उनकी सलाह के बावजूद मैं समीक्षाएं लिखना रोक नहीं पाया। उन दिनों ' जनसत्ता' में मंगलेश डबराल साहित्य देखते थे। जब मैं उनके पास जाता वह दो-चार पुस्तकें मुझे पकड़ा देते । सभी कहानी संग्रह या उपन्यास। महीने में लगभग दो समीक्षाएं मेरी वह छापते भी। उससे पहले 'दैनिक हिन्दुस्तान' में आनंद दीक्षित मुझसे साग्रह लिखवाते रहे थे। जब भी अच्छे संग्रह या उपन्यास आते, दीक्षित जी फोन करके मुझे बुला लेते।

कमलेश्वर जी की बात न मानने का खामियाज़ा मुझे भुगतना पड़ा। समीक्षक - आलोचक बनना मेरा स्वप्न कभी नहीं रहा और न ही यह विचार कभी मन में आया कि अब तक लिखी समीक्षाओं के आधार पर कोई पुस्तक तैयार कर लूं, जैसा कि कुछ लेखकों ने किया भी। उल्टे शत्रु अलग बनाये , यह सब जानते हुए भी लिखना बंद नहीं कर पाया, कम अवश्य हुआ।

लंबे अंतराल के बाद एक साहित्यिक कार्यक्रम में कमलेश्वर जी से मुलाकात हुई। उन दिनों वह बहुत व्यस्त थे। धारावाहिकों के लिए काम कर रहे थे। टकराते ही प्रणाम कर मैने अपना परिचय दिया। कमलेश्वर जी तपाक से बोले, "चन्देल जी, आपको बताने की आवश्यकता नहीं।" और वह अपनी व्यस्तताओं की चर्चा करने लगे थे, "क्या करूं मेरी एक टांग हवाई जहाज में होती है- दिल्ली - मुम्बई के बीच झूलता रहता हूँ।"

उसके पश्चात फिर कुछ समय बीत गया। एक दिन रात कमलेश्वर जी का फोन आया। मैं गदगद। "चन्देल, मैं अब पूरी तरह दिल्ली आ गया हूं. 'चन्द्रकान्ता' का काम जल्दी ही सिमट जायेगा , कुछ दिनों की ही बात है आप संपर्क में रहें। आपके साथ कुछ करना चाहता हूँ।"

मेरे लिए इससे बड़ी प्रसन्नता की बात क्या हो सकती थी कि कमलेश्वर जी ने मुझे इस योग्य समझा था। मैंने पूछ लिया, "भाई साहब , क्या योजना है?"

"आल्हा-ऊदल पर एक धारावाहिक की योजना है।"

मैंने स्वीकृति दे दी। मैंने तब सोचा था, और आज भी सोचता हूँ कि आल्हा-ऊदल के लिए उन्होंने मेरा चयन शायद इसलिए किया होगा क्योंकि वे दोनों चन्देल नरेश परिमर्दिदेव की साली के पुत्र थे और उन्हीं के दरबार में थे। दोंनो ने उनके लिए कई गौरवपूर्ण लड़ाइयां लड़ी थीं और 'लोक पुरुष' बन गये थे।

मैंने कमलेश्वर जी से हाँ तो कह दी, लेकिन स्वयं द्विविधा में पड़ गया था। वह द्विविधा थी मेरी सरकारी नौकरी। जिस विभाग में नौकरी करता था वहाँ ऐसी किसी भी गतिविधि में शामिल होने की भनक मेरी प्रताड़ना का कारण बन सकता था। स्थितियाँ ऐसी न थीं कि नौकरी छोड़कर कमलेश्वर जी के साथ जुड़ लेता। अस्तु , मैंने कमलेश्वर जी से संपर्क नहीं साधा और उन्होंने भी मुझे याद नहीं किया। पूरी तरह दिल्ली आकर उनकी प्राथमिकताएं बदल गयी थीं। वह लेखन और पत्रकारिता में डूब गये थे। उन्होंने 'भास्कर' समूह के प्रधान सम्पादक का पद स्वीकार लिया था, ''कितने पाकिस्तान', पर काम कर रहे थे और कई अखबारों के लिए नियमित स्तंभ लिख रहे थे।

उन्हीं दिनों की बात है। मेरे एक मित्र सरकारी सेवा से अवकाश प्राप्त कर दिल्ली में बस गये और स्वतंत्र लेखक और पत्रकारिता का मार्ग ग्रहण किया। यह एक कठिन मार्ग है। कठिनाइयां होनी ही थीं। उन्हें मुकम्मल नौकरी की तलाश थी, क्योंकि तब उनकी आयु पैंतालीस के आस-पास थी। पारिवारिक दायित्व और छोटी-सी पेंशन मैं चाहता था कि उन्हें किसी अखबार - पत्रिका में काम मिल जाये। वह स्वयं इस दिशा में प्रयत्नशील थे। मैंने अपने वरिष्ठ मित्र योगेन्द्र कुमार लल्ला से बात की, जो उन दिनों 'अमर उजाला' (मेरठ) में संयुक्त सम्पादक थे। मित्र उनसे मिलने गये। लेकिन बात आगे नहीं बढ़ी। तभी मुझे विचार सूझा कि यदि वह कमलेश्वर जी से मिल लें तो शायद कुछ बात बन जाये। सुना था कि कमलेश्वर जी ने लगभग सौ लोगों को या तो नौकरी दिलवायी थी या किसी न किसी रूप में उनकी सहायता की थी। अपना विचार मित्र पर प्रकट किया वह बोले, "कमलेश्वर जी मुझे नहीं जानते कैसे मिलूं-कहूँ!"

"मैं मिलवा दूंगा और कह भी दूंगा।" मैंने कहा।

इसे संयोग ही कहना होगा कि कुछ दिनों बाद ही एक साहित्यिक कार्यक्रम में कमलेश्वर जी से मुलाकात हो गयी। मित्र मेरे साथ थे। मैंने कमलेश्वर जी को उनका परिचय दिया तो वह तपाक से बोले, " चन्देल, मैं इन्हें जानता हूँ"। दरअसल कमलेश्वर जी की यह विशेषता थी कि वह किसी को यह अहसास नहीं होने देते थे कि वह उसे नहीं जानते थे।

"भाई साहब, ये आपसे अपने किसी काम से मिलना चाहते हैं।" मैंने कहा, "इन्हें आपकी मदद की आवश्यकता हैं।"

"सण्डे को फोन करके आ जायें।"
लगभग डेढ़ वर्ष तक उस मित्र ने कमलेश्वर जी के साथ काम किया। उसके बाद उन्होंने उन्हें 'दैनिक भास्कर' में बतौर उप-सम्पादक नौकरी दिला दी, जहां वह स्वयं प्रधान संपादक थे। यद्यपि मित्र को कमलेश्वर जी के साथ जोड़ने में मेरी कोई अहम भूमिका नहीं थी, जिस मित्र ने कमलेश्वर जी पर लिखे अपने संस्मरण में स्पष्ट भी किया, लेकिन मैं कमलेश्वर जी के प्रति कृतज्ञ अनुभव करता रहा। मैंने उनसे पहली और अंतिम बार किसी काम के लिए कहा और उन्होंने मुझे महत्व दिया था। जैसा कि कहा, कमलेश्वर जी ने अनगिनत लोगों की सहायता की और लोग उनके प्रति कृतज्ञ रहे, लेकिन ऐसे भी उदाहरण हैं जो बाद में उन्हें गाली देते देखे गये।

ऐसा ही एक उदाहरण एक अनुवादक, टिप्पणीकार और कवि महोदय का है।

हुआ यह कि 26मई,2006 (शनिवार) को हिमाचल की 'शिखर' संस्था ने कमलेश्वर जी को प्रथम शिखर सम्मान प्रदान किया। सम्मान हिमाचल के तत्कालीन मुख्यमंत्री वीरभद्र सिंह ने उन्हें दिल्ली आकर हिमाचल भवन में प्रदान किया, क्योंकि उन दिनों खराब स्वास्थ्य के कारण कमलेश्वर जी ने शिमला जाने में असमर्थता व्यक्त की थी। कार्यक्रम के संयोजक कथाकार -पत्रकार बलराम थे। बलराम का आग्रह था कि मैं वहां 'कितने पाकिस्तान' पर बोलूं। कमलेश्वर जी पर अंग्रेजी में केशव और उर्दू में साहित्य अकादमी के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ.गोपीचाद नारंग को बोलना था। हिन्दी के लिए मुझे चुना गया था। मैं बोला। अगले दिन कई अखबारों में समाचार प्रकाशित हुआ। जिन अनुवादक , टिप्पणीकार और कवि सज्जन का उल्लेख किया, वह 28 मई को मेरे घर आये। उन्होनें 'जनसत्ता' में समाचार पढ़ा था। कार्यक्रम की चर्चा चली तो उत्तेजित स्वर में बोले, "कमलेश्वर जैसा कमीना व्यक्ति मैंने अपनी जिन्दगी में कोई दूसरा नहीं देखा।"

मैं हत्प्रभ।
मुझे कुछ कहने का अवसर दिए बिना वह आगे बोले, "देखा कैसे 'शिखर सम्मान' मैनेज कर लिया।"
"कमलेश्वर जी को उसे मैनेज करने की क्या आवश्यकता थी। उन्हें सम्मानित कर 'शिखर संस्था' ने स्वयं को सम्मानित अनुभव किया होगा." मैंने प्रतिवाद किया। क्षण भर की चुचुप्पी के बाद वह बोले, " और कुछ लोगों को मंच चाहिए होता है बोलने के लिए ... कैसा भी हो .. बोल आते हैं ।" यह टिप्पणी मेरे लिए थी उनकी । उसके बाद उन्होंने मेज पर से अपना चश्मा और पान का पैकेट (वह पान खाने के शौकीन हैं, एक खाते हैं और चार बंधा लेते हैं और हर समय साथ लेकर चलते हैं) उठाया और मेरे कुछ कहने से पहले ही बिना दुआ - सलाम प्रस्थान कर गये। लेकिन जब कमलेश्वर जी की मृत्यु हुई ,तब ये सज्जन मेरे साथ उनकी अंत्येष्टि में गये थे। हमारे साथ एक वरिष्ठ कवि और एक कथाकार मित्र भी थे।

उन सज्जन ने सबके सामने जो रहस्योद्घाटन किया उसने मुझे चौंकाया था। कमलेश्वर जी ने उनके बेटे की दो बार नौकरी लगवाई थी। नौकरी ही नहीं लगवाई थी, बल्कि उन्हें फोन करके सूचित भी किया था कि उनका बेटा जाकर वहाँ से नियुक्ति-पत्र ले ले।

हिन्दी में दूसरा कोई लेखक इतना उदार मुझे नहीं मिला, जितना कमलेश्वर जी थे। यदि कोई उदार रहा भी तो वह उनकी जैसी सक्षम स्थिति में नहीं रहा होगा। दरअसल दूसरों का कष्ट उन्हें अपना लगता था। शायद इसका कारण यह था कि उन्होंने अपने जीवन की शुरूआत बहुत ही संघर्षों से की थी। एक स्थान पर अपनी उस स्थिति का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा कि वह उन दिनों दिल्ली के राजेन्द्र नगर में रहते थे। बेटी छोटी थी। नौकरी कोई थी नहीं। उन दिनों नाश्ते के लिए एक अण्डा उबाला जाता, जिसके पीले हिस्से को ब्रेड में लगाकर वे बेटी को देते और ऊपर के सफेद हिस्से को आधा गायत्री जी और आधे को वह ब्रेड के साथ लेते। कह सकते हैं कि कमलेश्वर जी कभी अपने अतीत को भुला नहीं पाये तभी अपने पास आए हर जरूरत मंद की सहायता के लिए तत्पर रहे। जब रमेश बत्तरा बीमार होकर अस्प-ताल में भर्ती हुए, कमलेश्वर जी ही ऐसे साहित्यकार थे जो गायत्री जी के साथ नियमित शाम रमेश को देखने जाते रहे थे। डाक्टर रमेश का कोई ऑपरेशन करना चाहते थे, जिसके लिए लगभग सत्तर हजार रुपये खर्च होने थे। कमलेश्वर जी ने डाक्टर से कहा कि, " आप खर्च की चिन्ता न करें, मैं दूँगा जो भी खर्च होगा आप ऑपरेशन करें। "

रमेश ने मुम्बई में 'सारिका' में उनके साथ काम किया था। सोचा जा सकता है कि वह कितना चाहते थे लोगों को। बाद में डाक्टरों ने यह कहकर रमेश का ऑपरेशन नहीं किया था कि वह आखिरी स्टेज में थे।

हिन्दी में आज जो दलित विमर्श चर्चा का केन्द्र है, उसे कमलेश्वर जी ने तब उठाया था, जब यह लोगों की कल्पना से बाहर था, भले ही उसका स्वरूप कुछ और था।
कमलेश्वर प्रखर प्रतिभा के धनी और प्रयोगशील व्यक्ति थे। उन्हें यदि शब्दों का जादूगर कहा जाय तो अत्युक्ति नहोगी। उन्होंने अनेक फिल्में लिखीं और लगभग सौ फिल्मों के लिए संवाद लिखे। सतह से उठकर उन्होंने शिखर छुआ। वह पहले और शायद अंतिम व्यक्ति थे जो बिना आई.ए.एस. रहे दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक पद पर रहे थे। इंदिरा गांधी को केन्द्र में रखकर 'आंधी' जैसी फिल्म लिखने वाले कमलेश्वर जी को इंदिरा जी बहुत पसंद करती थीं। अंतिम दिनों में वह इंदिरा जी पर बनने वाली फिल्म के लिए काम कर रहे थे। सही मायने में वह विराट व्यक्तित्व के धनी और अथक परिश्रमी थे। उनके साथ मेरी दो मुलाकातें अविस्मरणीय रहीं। एक में मैंने उनका लंबा साक्षात्कार किया था। दूसरी में मैं सपरिवार उनके घर था। लगभग ढाई घण्टे मेरे परिवार के साथ घुल-मिलकर वह बातें करते रहे थे।

जिस रात कमलेश्वर जी की मृत्यु हुई, उस दिन अपरान्ह चार बजे मेरी मुलाकात उनके साले डॉ. माधव सक्सेना 'अरविन्द' (कथाबिंब त्रैमासिक (मुम्बई) के सम्पादक) के साथ कनॉट प्लेस के कॉफी होम में निश्चित थी। अरविन्द जी सपत्नीक वैवाहिक कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए आए थे। भाभी जी भी कॉफी होम आयीं थीं। उन्होंने कथाकार विजय को भी बुला लिया था। बातचीत के दौरान कमलेश्वर जी की चर्चा आयी तो अरविन्द जी बोले, "स्वास्थ्य ठीक नहीं है, फिर भी शादी में वे दीदी के साथ पहुंचे थे।"
दरअसल कमलेश्वर जी किसी भी आत्मीय के कार्यक्रम में जाने या मिलने का कोई अवसर छोड़ना नहीं चाहते थे। मृत्युवाले दिन भी कुछ ऐसा ही हुआ था। वह विदेश से आये अपने एक मित्र से मिलने गये थे, लेकिन घर नहीं लौट पाये। वह उनकी अंतिम यात्रा सिद्ध हुई थी।

कमलेश्वर जी की मृत्यु हिन्दी जगत के लिए अपूर्णीय क्षति है। वह कितना 'पापुलर' थे, इसका प्रमाण यह था कि उनकी मृत्यु के पश्चात देश के अनगिनत शहरों-कस्बों में उनके लिए शोक सभाएं आयोजित की गईं और अनेक पत्रिकाओं ने उन पर विशेषांक निकाले थे। शायद ही किसी हिन्दी लेखक की मृत्यु के बाद इतना सब हुआ हो। "उनके साक्षात्कार का एक अंश 'गगनांचल' में प्रकाशित करने के विषय में जब मैंने डॉ. कन्हैया लाल नन्दन जी से बात की तब छूटते ही वे बोले थे , " उनके साक्षात्कार के विषय में पूछने की क्या बात रूपसिंह... उनके लिए मैं कुछ भी कर सकता हूँ।"

तो ऐसे थे कमलेश्वर जी। चमत्कारिक व्यक्तित्व। कुछ लोग उनकी प्रशंसा करते हुए उनकी कुछ कमियों – कमजोरियों का उल्लेख करना नहीं भूलते। कमियां – कमजोरियां इंसान में ही होती हैं और कमलेश्वर जी भी एक इंसान ही थे।

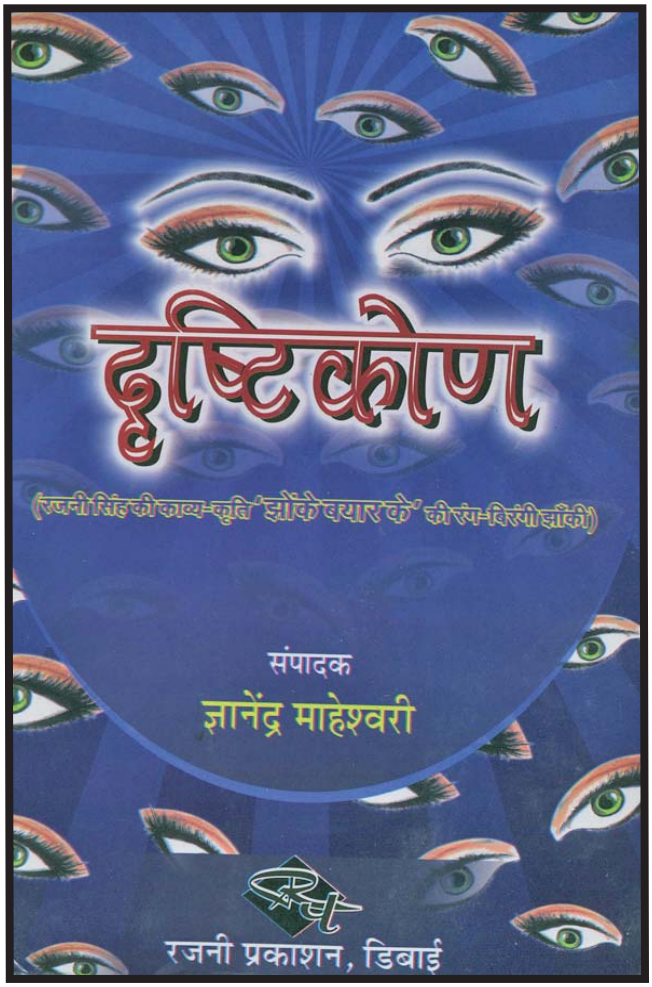

"रिज़क" संस्मरण

ऊषा देव (अमेरिका)

हम मनुष्य हैं। सोचना , विचार-ना , छोटी - छोटी बातों पर मनन करना और अंत में प्रभु की माया पर आश्चर्यचकित होना , यह सब मनुष्यता के चिन्ह हैं । इसी विचार को लेकर मैं आपके सम्मुख एक सत्य घटना प्रस्तुत करती हूँ।

बात सन् 1972 की है। मेरे पिता जी सरकारी सेवा से निवृत्त हो चुके थे और चण्डीगढ़ में स्थायी रूप से बस गये थे। वह अपनी सेवा निवृत्ति का पूर्ण रूप से आनन्द ले रहे थे और नाती पोतों के साथ सुख का जीवन व्यतीत कर रहे थे। सर्दी के दिन थे। बाहर आँगन में अच्छी धूप खिली थी। जैसी कि भारत में प्रथा है, बुज़ुर्ग लोग धूप में बैठकर अथवा लेट कर प्रभु की इस मुफ्त देन का आनन्द लेते हैं। पिता जी ने दोपहर का भोजन प्रीतिपूर्वक किया , हँसी - हँसी में माता जी को धन्यवाद दिया , शुभकामनाओं की झड़ी लगा दी और बाहर धूप में चारपाई लगाकर थोड़ी देर विश्राम करने का निर्णय किया । फिर सोचा, " लेटूँगा नहीं , लेटने से आलस्य अधिक आता है, बस आराम कुर्सी पर पैर फैला कर बैठूंगा और आँखें मूँद कर थोड़ा विश्राम कर लूँगा"। मेरे भाई ने आंगन में उनके लिए कुर्सी लगा दी।

पिता जी कुर्सी पर जा बैठे। उनके दाँतों के बीच रोटी का एक कण फस गया था। उनकी जीभ घूम फिर कर उस कण को निकाल फेंकने में जुटी थी। कुर्सी के ठीक सामने दीवार के सहारे एक पुरानी चारपाई खड़ी थी। आँखे मूंदने से पहले उनका ध्यान उस कीड़े पर पड़ा जो बार बार उस खड़ी चारपाई पर ऊपर चढ़ता और कुछ ही क्षणों में फिसल कर थोड़ा सा नीचे पहुँच जाता, फिर चढ़ता, फिसलता । पिता जी का ध्यान उस कीड़े पर लगा था और वह उसे एकटक देखे जा रहे थे। उन्हें राजा ब्रूस स्पाइडर की कहानी की याद आई । परन्तु उनके विचार राजा ब्रूस से बिल्कुल भिन्न थे। वह सोच रहे थे , " यह कीड़ा इतना छोटा है और चारपाई के ऊपर तक जाने की व्यर्थ चेष्टा कर रहा है। यह नहीं कि घूम फिर कर कुछ खाने को जुटाये यह क्या खाता होगा , इतना छोटा है कितना खाता होगा ।" इन्हीं पोह के बीच उनके दाँतों में फंसा रोटी का कण आज़ाद हो गया, उन्होंने उसे जीभ की नोक पर लगाकर थूका। वह कण सीधा उस कीड़े के पास चारपाई पर अटक गया। कीड़ा झपटा और उस कण को मुँह में दबा कर फटाक से उड़ गया।

पिता जी हैरान से प्रभु की इस लीला पर विचार कर रहे थे कि पड़ोस में किसी के घर से रेडियो पर शब्द कीर्तन की आवाज़ आ रही थी।

" तेरा दित्ता खावणाँ , तूँ दाता है।
दित्त दाता एक है , सबको देवणहार।
दित्ते खोट न आबई , अगनत भरे भँडार।
देवन को एके भगवान माता के उदर में प्रितपाल करे।
जिन पैदाए तूँ किया तूँ ही पालनहार।
सैल पत्थर में जन्तु उपजाए तैका रिज़क आगे कर धरया
तेरा दित्ता खावणाँ।"
न जाने किस क्षण उनकी आँख लग गई । लगता था जैसे उनके मन से कोई बहुत बड़ा बोझ उतर गया था।

रिज़क –भोजन

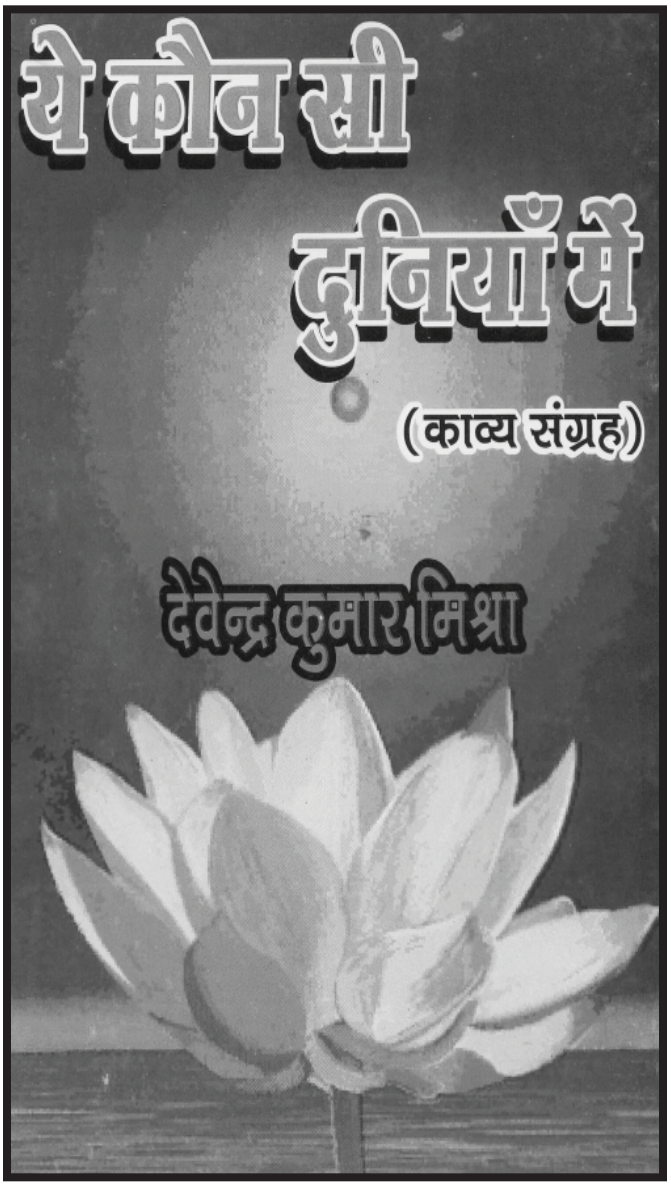

कहानी

अंतिम तीन दिन

- दिव्या माथुर (यू. के.)

अपने ही घर में माया चूहे सी चुपचाप घुसी और सीधे अपने शयनकक्ष में जाकर बिस्तर पर बैठ गई - स्तब्ध। जीवन में आज पहली बार मानों सोच के घोड़ों की लगाम उसके हाथ से छूट गई थी। आराम का तो सवाल ही नहीं पैदा होता था। अब समय ही कहाँ बचा था कि वह सदा की भांति सोचे और बैठकर टेलिविजन पर कोई रहस्यपूर्ण टी.वी. धारावाहिक देखते हुऐ चाय की चुस्कियाँ लेती। हर पल कीमती था। तीन दिन के अंदर भला कोई अपने जीवन को कैसे समेट सकता है? पचपन वर्षों के संबंध ,जी जान से बनाया ये घर, ये सारा तामझाम और बस केवल तीन दिन! मज़ाक है क्या? वह झल्ला उठी किन्तु समय व्यर्थ करने का क्या लाभ। डॉक्टर ने उसे केवल तीन दिन की मोहलत दी थी। ढाई या साढ़े तीन दिन की क्यों नहीं? उसने तो यह भी नहीं पूछा। माया प्रश्न नहीं पूछती , बस जुट जाती है तन मन धन से किसी भी आयोजन की तैयारी में, वह भी युद्ध (स्तर पर, बेटी महक होती तो कहती, ममा, 'स्लो डाउन'। जीवन में उसने अपने को सदा मुस्तैद रखा कि न जाने कब कोई ऐसी वैसी स्थिति का सामना करना पड़ जाए। बुरे से बुरे समय के लिए स्वयं को नियंत्रित किया ताकि वह मन को समझा सके कि इससे और भी तो बुरा हो सकता था।

खैर तीन दिन बहुत होते हैं। एक हफ्ते में तो भगवान ने पूरी दुनिया रच डाली थी। बिगाड़ने के लिए तो एक तिहाई समय भी बहुत होना चाहिए। किन्तु उसे बिगाड़ कर नहीं ये घर संवार के छोड़ना है। सम्पत्ति को ऐसे बाँटना है कि किसी को यह महसूस न हो कि अंधा बांटे रेवड़ी भर अपने को दे। संसार से यूँ विदा लेनी है कि लोग याद करें। कमर कसके वह उठ खड़ी हुई।

तीनों अल्मारियों के पलड़े खोलकर माया लगी अपनी भारी साड़ियों, बूटों और गर्म कपड़ों को पलंग पर फेंकने। जैसे उस ढेर में दब जाऐगी उसकी दुश्चिंता। छोटे बेटे वरुण की शादी को अभी एक साल भी तो नहीं हुआ। कितने कपड़े और गहने बनवाये थे माया ने। जैसे अपनी सारी इच्छाओं को वह एक ही झटके में पूरा कर लेना चाहती हो। 'हे भगवान ! अब क्या होगा इन सबका,' समय होता तो वह भारत जाकर बहन भाभियों में बाँट देती। ऑक्सफैम में जाने लायक नहीं हैं ये कीमती साड़ियाँ पर उसकी बहुओं और बेटी का इस 'इंडियन' पहनावे से क्या लेना - देना।

पहली नैट की गुलाबी साड़ी को चेहरे से लगाऐ माया सोच रही थी कि इसे पहनने के लिए उसने अपना पूरा पाँच किलो वजन घटाया था। मुँह मांगे दाम पर खरीदी थी ये साड़ी उसने रितु कुमार से। छोटी बहन तो बस दीवानी हो गई थी, 'जीजी, इस साड़ी से जब आपका दिल भर जाए तो हमें दे दीजिएगा, प्लीज़।' उसे तब ही दे देती तो छोटी कितनी खुश हो जाती। पर तब उसने सोचा था कि इसे पहन कर पहले वह अपने लंदन और योरोप के मित्रों की चर्चा का विषय बन जाए, फिर दे देगी। किसी ने ठीक ही कहा है, 'काल करे सो आज कर'। एका -एक उसे एक तरकीब सूझी। क्यों न वह इसे छोटी को पार्सल कर दे और साथ में ही भेज दे इसका मैचिंग कुंदन का सैट भी। कुंदन के सैट के नाम पर उसका दिल मानो सिकुड़ के रह गया। बड़ी बहू उषा को पता लगेगा कि सास ने साढ़े तीन लाख का सैट छोटी को दे दिया तो वह उसे जीवन भर कोसेगी। पर छोटी जितनी कद्र भला बहुओं और बेटी महक को कहाँ होगी। माया चाहे कितना कहे कि वह किसी से नहीं डरती पर सच तो ये है कि वह मन ही मन सबसे ही डरती है अपने बच्चों से लेकर सड़क पर चलते राहगीरों तक से कि वे क्या सोचते होंगे। कहीं वे यह न कहें या कहीं वे वो न सोचें। पर अब वही करेगी जो उसका मन चाहेगा। वैसे भी बच्चे अपने - अपने घरों में सुख से हैं। न भी हों तो उसने फैसला कर ही लिया था कि वह अब कभी उनके घरेलू मामलों में दखल अंदाज़ी नहीं करेगी। सगे-संबंधी और मित्र भी मरने वाले की अंतिम इच्छा का सम्मान करेंगे ही। फिर भी न चाहते हुए भी माया दूसरों के लिए ही सोच रही थी। अपने लिये सोचने को रखा ही क्या है? मंदिर जाये गिड़गिड़ाये कि भगवान बचा लो। जिंदगी के इस आखिरी पड़ाव पर क्यूं अपने लिये कुछ मांगे और मांगने से क्या कुछ मिल जाऐगा। अब तक तो वह जब भी भगवान के आगे गिड़गिड़ाई है सदा औरों के लिये। हर सुबह यही प्रार्थना करती आई है 'भगवान सबका भला करना' या 'जो भी ठीक समझो वही करना', क्योंकि मनुष्य की हवस का तो कोई अंत नहीं। अमेरिका में तो सुना है कि लोगों ने हज़ारों डालर देकर मरणोपरांत अपने शवों के प्रतिरक्षण का प्रबंध करवा लिया है ताकि भविष्य में जब भी टैक्नोलॉजी इतनी विकसित हो जाए उन्हें जिला लिया जाए। माया को यह समझ नहीं आता कि ऐसा क्या है मानव शरीर में कि उसे सदा जीवित रखा जाए। गांधी, मदर टेरेसा या मार्टिन लूथर किंग जैसे महानुभावों को सुरक्षित रख पाते तो और बात थी। अच्छी से अच्छी प्लास्टिक सर्जरी के उपलब्ध होने पर भी एलिजाबेथ टेलर जैसी करोड़पति सुंदरी भी कुरूप दिखती है। प्रकृति से टक्कर लेकर भला क्या लाभ। उसे जो करना था वह कर चुकी।

माया एक अजीब सी मन: स्थिति से गुज़री है। उसे लगता है कि कहीं कुछ अप्राकृतिक अवश्य है। वह परेशान है कि उसे मौत से डर क्यों नहीं लग रहा। हो सकता है कि अत्याधिक भय की वजह से उसने भय को अपने मस्तिष्क से 'ब्लॉक' कर रखा हो। जो भी हो अच्छा ही है। अन्यथा भयवश न तो वह कुछ कर पाती और न ही ठीक से सोच ही पाती। बच्चों को बताने का कोई औचित्य नहीं। बेकार परेशान होंगे और उसकी नाक में दम कर डालेंगे। पिछले महीने ही की तो बात है जब उसे फ़्लू हो गया था। दुर्भाग्यवश वरुण और विधि घर पर थे। उन्होंने तीमारदारी कर करके माया की ऐसी की तैसी कर दी थी। उसे आराम से सोने भी नहीं दिया था। कभी दवाई का समय हो जाता तो कभी खिचड़ी का, कभी गरम पानी की बोतल बदलनी होती तो कभी गीली पट्टी। नहीं नहीं चुपचाप मर जाना बेहतर होगा। बच्चों को भी तसल्ली हो जाएगी जब लोग कहेंगे कि माया बड़ी भली आत्मा रही होगी कि नींद में चल बसीं। वैसे कह भर देने से ही कितनी तसल्ली हो जाती है या शायद दिल को समझा लेना आसान हो जाता होगा। लोगों के पास चारा भी क्या है? जीवन के हल में सीधे जुत जो जाना होता है। आजकल तो लोग तेरहवीं तक भी घर में नहीं करते। छुट्टियाँ ही कहां बचती हैं। साल में एक बार भारत जाना होता है। फिर परिवार और मित्रों के साथ दो या तीन बार योरोप की यात्रा पर भी जाना पड़ता है। पहले जमाने में कभी लेते थे लोग छुट्टियाँ ऐसे काम काज के लिए। माया तो हारी बीमारी में भी उठके दफ्तर चली जाती थी कि एक छुट्टी बचे तो मंडे बैंक हौलिडे के साथ जोड़कर कहीं आसपास ही हो आए। उसका मानना है कि इंग्लैंड की तनाव भरी जलवायु से तब तक निकल भागना आवश्यक है। वैसे भी यहाँ के बहुत से लोग मानसिक बीमारियों से ग्रस्त रहते हैं। जिसे देखिए वही " टैन्स्ड" है।

माया भी 'टैन्स्ड" है। अपनी उँगलियां उलझाए वह सोच रही है कि पर्दों को धो डाले और घर की झाड़पौंछ भी कर ले। मातमपुर्सी को आए लोग कहीं ये न कहें कि दूसरों को सफाई पर भाषण देने वाली माया स्वयं इतने गंदे घर में रहती थी। आज तो केवल बुधवार है और घर की सफाई करने वाली ममता तो शनिवार को ही आएगी। शनिवार को वे दोनों मिलकर घर की खूब सफाई करती हैं और फिर दोपहर में एक नई हिंदी फिल्म देखने जाती हैं। शाम का खाना भी बाहर ही होता है। रात को ममता को उसके घर छोड़कर जब माया वापिस आती हे तो अपने साफ-सुथरे फ्लैट में खुशबूदार बिस्तर पर पसर जाना उसे बहुत अच्छा लगता है। कभी-कभी तो इस संवेदना के रहते वह सो भी नहीं पाती। उनके मना करने के बावजूद ममता उसे 'मैडम' कहकर ही पुकारती है और उसकी बहुत इज्जत करती है। हालांकि बच्चों को लगता है कि मां ने उसे सिर पर चढ़ा रखा है। माया उसे अपने परिवार का एक सदस्य ही मानती है। कर्मठ ईमानदार और निष्ठावान है ममता , माया की तरह ही। शायद इसीलिये माया को उसका साथ पसंद है। उसकी सहेलियाँ उसे इस बर्ताव पर नाक भौं चढ़ाती रहती हैं तो चढ़ाया करें।

नारायण को लेकर ममता कुछ अधिक ही परेशान

है। उसका इकलौता बेटा नारायण जिसके पिता की आकस्मिक मृत्यु हो गई थी । बुरी संगत में पड़कर एक गुंडे के गिरोह में ड्राईवरी कर रहा है। आजकल उसकी इच्छा है कि उसके प्रवास के दौरान नारायण एक बार लंदन घूमने आ जाए। माया ने दिल्ली में अपने भाई पारस के जरिए उसका पासपोर्ट बनवा दिया और वीजा भी लग ही जाएगा। ममता के इसरार पर माया ने पिछले साल पटना के किसी अधिकारी को इस बाबत लिखा भी था पर वहाँ से आज तक कोई जवाब नहीं आया। दिल्ली मुम्बई जैसे शहर होते तो शायद कोई जान पहचान निकल भी आती। हर शनिवार ममता बड़ी आस लिए आती है। मैडम कोई चिट्ठी पत्री -आई? न में सिर हिलाती माया सोचती है कि कुछ करना चाहिए किन्तु वह कर क्या सकती है? अपना बेटा होता तो क्या वह चुप बैठ जाती। उसका मन कई बार होता है कि बारक्लेज़ बैंक के पाँच हजार के बॉन्ड्स ममता को दे दे ताकि वह नारायण को उन गुंडों से बचा सके किन्तु फिर वही दुविधा की मेहनत से कमाये उसके धन का सीधी सादी ममता कहीं दुरुपयोग न कर बैठे।

बच्चों को क्या किसी और को भी यदि ये पता लग गया कि उन्होंने इतनी बड़ी रकम ममता को दे दी तो वे उसे पागल समझेंगे। किन्तु धन का इससे अच्छा उपयोग भला क्या हो सकता है? महक होती तो कहती, 'ममा, डू व्हाट यू लाइक इटज़ यौर मनी आफटर ऑल।' वरुण और विधि को उसके धन से कुछ लेना देना नहीं। विधि साईं बाबा ट्रस्ट की सदस्य है कभी बाढ़ पीड़ितों के सहायतार्थ जाती है तो कभी किसी सेवा शिविर के लिए काम करती है। अरुण कहता है कि उन्हें पैसे की कोई कद्र नहीं और ये भी कि यदि माँ चाहें तो उनका पैसा वह किसी अच्छी जगह इन्वैस्ट कर सकता है। इकलौती संतान के नाते उषा को हर चीज अपने नाम करवाने की पड़ी रहती है। इतनी बड़ी रकम उन्होंने पहले किसी को दी भी तो नहीं। उनकी मृत्यु के बाद कहीं बच्चे बेचारी ममता पर कोई मुकदमा ही न ठोक दें। दुनिया में क्या नहीं होता? माया का सोचना ही उसका दुश्मन है पर सोच पर किसी का क्या बस।

बस अब और नहीं सोचेगी माया। अभी जाकर वह बॉन्ड्स भुनवा लेगी और शनिवार को ममता को दे देगी। कहीं वह शुक्रवार को ही स्वर्ग सिधार गई तो? हालांकि वह शुक्रवार की शाम को मरे तो बच्चों और सगे-सबंधियों को सप्ताहांत मिल जाएगा। इतवार को ही स्विटज़रलैंड से वरुण और विधि भी छुट्टियाँ मना कर लौट आएँगे। माया को अच्छा नहीं लगा कि आते ही उन्हें कोई बुरी खबर दे पर किया क्या जा सकता है?

बैंक जाते समय माया सोचने लगी कि किसी के आखिरी वक्त में सबसे विशेष बात क्या हो सकती है? क्यों वह सीधे कपड़ों, गहनों की तरफ भागी? क्या वे मामूली चीजें उसके लिये इतना महत्त्व रखती हैं? आज तक तो वह यही सोचती आई थी कि उसके मरने के बाद बेटे बहू उसका तमाम बोरिया- बिस्तर बोरियों में भर कर ऑक्सफैम या किसी और चैरिटी को दे आयेंगे। समय के अभाव में शायद उसका सामान वे कूड़ेदान में ही न फेंक दें। खैर ये सोचकर क्या वह अपना अमूल्य समय व्यर्थ नहीं गवाँ रही? उसे क्या लेना देना इस भौतिक समान से किन्तु किसी के काम आ जाए तो अच्छा ही है। भारत में कई परिवार इन चीजों से अपने बहुत से तीज त्यौहार मना सकते हैं। ऑक्सफैम वाले क्या समझेंगे भारतीय पहनावे को? वे इन्हें 'रीसाइकिलिंग' के लिए दाहित्र में ही न कहीं डाल दें।

पिछले दो वर्षों में ही माया ने दो मौतें देखीं थी और दोनों ही मृतकों ने कोई वसीयत नहीं छोड़ी थी। अभी अर्थी भी नहीं उठी थी कि बच्चों ने घर सिर पर उठा लिया। जिन माँ-बाप ने अपना जीवन अपने बच्चों पर न्यौछावर कर दिया था उनकी आत्मा की शांति के लिये प्रार्थना करने की बजाय उनके बच्चे उन्हें ही भला-बुरा कह रहे थे। खैर उसे इस सब की परवाह नहीं है। उसने अपनी सारी जायदाद, गहने, शेयर इत्यादि बांट दिये हैं सिवा इन कपड़ों और कुछ पारिवारिक गहनों के और इन्हीं की वजह से वह कल रात भर ठीक से सो भी नहीं पाई थी। इन भौतिक चीजों में मृत्यु जैसी विशेष बात भी डूब के रह गई थी।

सुबह उठते ही नहा धो कर माया बैठ गई आईने के सामने। बिना मेक अप के चेहरा कैसा बेरंग लग रहा था। करेले सी झुर्रियाँ और अर्बी सा रंग। उसने कहीं पढ़ा था कि जिसने जीवन में बहुत दुख झेले हों केवल वो ही एक अच्छा विदूषक हो सकता है। ठंड की गुनगुनी धूप सी मुस्कुराहट उसके चेहरे पर फैल गई। किंतु ये झुर्रियों से भरा चेहरा मृत्यु के पश्चात् कैसा लगेगा? जब लोग बक्से में रखे उसके पार्थिव शरीर के चारों ओर घूमकर श्रद्धाँजलि अर्पित करेंगे तो उन्हें कहीं मुँह न फेर लेना पड़े। माया को आकर्षक लगना चाहिये और ये मेक अप आर्टिस्ट पर निर्भर करेगा कि वह कैसी दिखाई दे? शायद और लोग भी इस बारे में चिंतित होते हों। हिम्मत करके उसने अंत्येष्टि निदेशक का नम्बर घुमाया। 'हेलो हाउ मे आइ हेल्प यू?' मीठी आवाज में स्वागती ने पूछा।

माया ने झिझकते हुए पूछा 'सौरी टु बौदर यू आइ हैड बुक्ड ए कौफिन फॉर माइसेल्पफ दि अदर डे आइ वंडर इफ समवन कुड टेक केयर ऑफ माई मेक अप ऐंड क्लोथ्स आफटर आई एम डेड...।'

'ऑफकोर्स मैडम यौर विश इज़ अवर कमांड।' स्वागती की वरदायनी अदा पर माया मुस्कुराने लगी। उसने सोचा कि वह मेक अप आर्टिस्ट को अपना भरा पूरा वैनिटि केस ही दे देगी ताकि कई अन्य भारतीय महिला मृतकों का भी उद्धार हो जाए। गोरे गोरियों के रंग का मेक अप तो इन लोगों के पास होता है किन्तु किसी भारतीय महिला ने शायद ही कभी ऐसी मांग की हो। उसे कहाँ फुर्सत इस आडंबर की। उसे यकायक याद आई मीना कुमारी की जो पूरी साज -सज्जा के साथ दफनाई गई थी।

चलो मेक अप और कपड़ों का बंदोबस्त हो गया। उसने सोचा कि क्यों न वह अपने बाल ट्रिम करवा ले? उसे अपने हेअरड्रैसर से भी विदा ले लेनी चाहिए। पिछले तीन दशकों में दोनों के बीच एक अच्छा समझौता हो गया है। वह जानता है कि कब उसके बालों को पर्म करना है , कब रंगना है या कब सिर्फ ट्रिम करना है। कभी माया उल्टी सीधी मांग कर भी बैठे तो वह साफ इंकार कर देता है 'नहीं ये आप पर अच्छा नहीं लगेगा' या 'अपनी जरा उम्र तो देखो माया।' हालांकि माया को आज भी लगता है कि वह एक बार उसके बालों को किसी सुर्ख रंग में रंग दे।

माया झट से उठी और कार में बैठकर चल दी वैम्बली हाई रोड की ओर। अभी कार को उसने दाईं ओर मोड़ा ही था कि उसने सोचा कि पहले उसे अपने होंठ के ऊपर उग आए बालों को ब्लीच करवा लेना चाहिए। उसने एक खतरनाक यू टर्न मारा। यदि कोई पुलिस वाला देख लेता तो उसे अवश्य ही धर लेता। 'ऑन दि स्पॉट फाईन' अलग देना पड़ता। पर अब डर किस बात का और ये पैसा किस काम का? यकायक उसने निर्णय लिया कि चाहे कितने भी पाउंड लगें वह रीजैंट स्ट्रीट पर स्थित सबसे मंहगे ब्यूटी पारलर में जाकर मसाज, ट्रिमिंग, आईब्रो, ब्लीचिंग और फेशियल आदि सब करवा लेगी।

'टी टूं टी टूं' का शोर मचाती एक एम्बुलैंस पास से गुजरी तो कार को धीमा करके माया एक तरफ हो गई। न जाने किसको दिल का दौरा पड़ा हो या दुर्घटना में घायल कोई दम तोड़ रहा हो। यदि समय पर डॉक्टरी सहायता मिल जाए तो कई मौतों को बचाया जा सकता है पर ये तो सब नसीब की बातें हैं।

एकाएक माया को ध्यान आया कि उसने अभी तक अपनी आँखें भी दान नहीं की थीं। आँखें ही क्यों गुर्दे, फेफड़े, दिल आदि उसे अपने सभी अंग दान कर देने चाहिए। साथ तो ये जाँयेंगे नहीं उसके। किसी के काम ही आ जाएँ तो अच्छा है किन्तु उसके बूढ़े अंग भला किसके काम आएँगे? डॉक्टरों को अनुसंधान के लिए भी तो मृत शरीरों की आवश्यकता पड़ती होगी। क्यों न वह अपना पूरा शरीर ही दान कर दे ताकि जिसे जो चाहिए ले ले। बाकी के बचे -खुचे टुकड़ों का कीमा बना कर खाद में डाले या . . .। माया भी कभी कैसी पागलों जैसी बातें सोचती है, पर अस्पतालों से जो मनो अंग-प्रत्यंग प्रतिदिन फेंके जाते हैं वे कहाँ जाते होंगे? प्लास्टिक के थैलों से लेकर दही के डिब्बों तक माया कूड़े में कुछ नहीं फैंकती। जहां देखिए कचरा ही कचरा। लोगों को रीसाइक्लिंग की ओर ध्यान देना होगा नहीं तो ये विश्व अवश्य तबाह होकर रहेगा।

अस्पताल जाकर वह अपना समूचा शरीर दान तो कर आई किन्तु मन में कई संदेह आते -जाते रहे। एक दुघर्टना में माया के दादा की उंगली कट गई थी। उनकी मृत्यु के उपरांत दादी ने विशेष तौर पर अंतिम उंगली लगवा कर उनका दाह संस्कार करवाया था। उनका विचार था कि यदि दादा को उनके सभी अंगों के साथ नहीं जलाया गया तो वह अगले जन्म में बिना उंगली के पैदा होंगे। हो सकता है क्योंकि माया ने अपना पूरा शरीर दान कर दिया है कि माया का जन्म ही न हो। वह यह भी मानती है कि हर जन्म में मनुष्य अपने को विकसित करता है और जब वह पूरी तरह से परिपक्व हो जाता है तब ही वह परमात्मा में विलीन होने में समर्थ होता है। माया को लगता है कि वह तो एक बच्चे से भी गई गुजरी है। बच्चे भी जब -तब कहते रहते हैं, 'ममा, यू आर ए चाइल्ड' या 'ममा, यू शुड ग्रो अप नाओ।' वह कहाँ इस योग्य कि भगवान उसे अपने में लीन कर सकें। अभी तो वह सांसारिक भोगों में आकंठ डूबी है।

खुश्बूदार मोमबत्तियों के मध्यम प्रकाश में तैरते भारतीय शास्त्रीय संगीत में डूबते उतराते उसके शरीर की मुलायम और सधे हाथों द्वारा मालिश ने उसे स्वर्ग में पहुँचा दिया। उसे लगा कि तन से मानो मनों मैल उतर गया हो। मन हवा से बातें कर रहा था। शायद संसार के ये छोटे -छोटे सुख -दुख ही स्वर्ग और नर्क हों। ब्यूटी पार्लर से निकली तो पहली बार माया ने जाना कि लोग अपने ऊपर इतना पैसा क्यों खर्च करते हैं। वह सचमुच कितनी मूर्ख थी कि जीवन भर दांत से भींचकर पैसा खर्च करती रही। पैसा होते हुए भी ऐसे सुख का उपभोग नहीं कर पाई। हालांकि उसकी बहुयें नियमित रूप से ब्यूटी पारलर और जिम जाती हैं। विधि तो उनसे भी चलने को कहती रहती थी किन्तु वह उसे सदा हँस कर ये जवाब देकर टाल देती थी 'बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम।'

आज वह बीसियों साल बाद गुनगुना उठी 'ऐ री मैं प्रेम दीवानी, मेरा दर्द न जाने कोए' पर कमजोरी के मारे आवाज खींच नहीं पाई और चुप हो गई। सोचा कि घर जाकर कुछ रियाज करेगी और फिर गाने की कोशिश करेगी। अभी तो उसे जोरों की भूख लगी थी।

सामने ही फेजी हौर्स पब था जो कि फिश एण्ड चिप्स के लिए मशहूर था। माया उसमें ही जाकर एक कोने में बैठ गई। किसी के फ्यूनरल से लौटी भीड़ शराब और सैंडविचेज़ में डूब उतर रही थी पर सच, ए यंग फेलो ही वाज़। एन एलीफैंट बाइ शोल्डर स्टिल हर्टस' , एक लंबा चौड़ा गोरा युवक अपने कंधे दबाता बोला और उसके अन्य साथियों ने भी उसकी हाँ में हाँ मिलाई 'ही डाइड ईटिंग यू नो।'

माया ने सोचा कि अमेरिका में अर्थी उठाने वालों का क्या हाल होता होगा क्योंकि वहां तो हर तीसरा व्यक्ति मोटापे से ग्रस्त है। दो ही दिन बचे हैं खाने को। यदि वह दो दिन कुछ न भी खाए तो भला उसका कितना वज़न कम हो जाएगा। बेचारी ने सलाद और संतरे के जूस का ही ऑर्डर दिया। जल्दी से खा पीकर वह सीधे जिम पहुँची कि यदि वह जम कर व्यायाम करे तो एक किलो वजन तो वह घटा ही सकती है। कम से कम उसके बेटे ये तो नहीं सोचेंगे कि ममा कितनी भारी थी। उनके कंधे तो नहीं दुखेंगे।

खाने से उसे यह भी याद आया कि जीजा जी की

तेरहवीं के अवसर पर बनवाई गई कद्दू की सब्जी को लोग आज भी याद करते हैं। पर बच्चों को तो ये भी नहीं पता होगा कि कद्दू क्या होता है? अपनी तेरहवीं का मेन्यु भी वह स्वयं ही बना के रख दे तो बच्चों का एक और सिर दर्द दूर हो जाए। कहीं उसके बच्चे भी ये न सोंचे कि मां को उन पर जरा भी विश्वास न था । तभी तो सारे इंतजाम करके गई पर उसे कहाँ बस था स्वयं पर। क्रिसमस के कार्डस तक तो वह अक्टूबर में लिख कर रख लेती है। अच्छा हुआ कि केवल दिन का ही नोटिस मिला अन्यथा मृत्यु की तैयारी में वह महीनों लगी रहती।

घर वापिस आकर उसने अपनी तसल्ली के लिए एक फाईल खोल ही ली। पहले पन्ने पर अन्त्येष्टि निदेशक ,उसकी सहायक और दो -तीन जानेमाने खान-पान प्रबंधकों के नाम-पते फोन ,और उनके ई-मेल आदि लिख दिए। अपनी एक टिप्पणी के साथ कि वे चाहें तो मौसा जी की तेरहवीं पर सपना केटरर द्वारा परोसा गया खाना ही दोबारा ऑर्डर कर सकते हैं जो सभी को बहुत पसंद आया था। हाँ, यदि वे कुछ नया आधुनिक आयोजन करना चाहें तो माया को कोई आपत्ति नहीं होगी।

आगुंतकों की भीड़- भाड़ में घर की सफाई, चाय-पानी के इंतज़ाम के लिए ममता का होना आवश्यक है। हालांकि माया की मृत्यु का समाचार सुनकर कहीं उसके हाथ-पाँव ही न छूट जाएँ। बेटे का जीवन संवारने के लिए ममता रात - दिन लोगों के घरों में सफाई करती है। वह तो शायद कभी ये भी नहीं जान पाती होगी कि कब फूल खिले, कब पत्ते झड़े या कब बरसात हुई। 'नारायण, नारायण' जपती वह पोचे मारती है, 'नारायण, नारायण' करती वह बर्तन धोती है और 'नारायण, नारायण' करके उसने माया की नाक में दम कर रखा है। बाग में भी वह बिना मोजे पहने निकल पड़ती है घर से। दस्तानों की तो बात दूर है। अकड़े हाथों से न जाने कैसे काम करती है। ठंड के मारे उसके पैरों की बिवाइयों में खून भी जम जाता है।

ममता एक भारतीय राजनायिक और उनके परिवार के साथ लंदन आई थी जिन्हें कार्यवश जल्दी ही स्वदेश वापिस जाना पड़ा। वे उसे दो वर्षों के लिये यहीं छोड़ जाने को राजी हो गए थे कि यहाँ वह कुछ पैसा कमा लेगी। नारायण तुला है किसी भी कीमत पर माँ के पास आने को और ममता दिन रात यही सोचकर डरती रहती है कि यदि उसकी मंशा किसी को भी पता लग गई तो गुंडे उसका न जाने क्या हश्र करें। नारायण का पासपोर्ट बन चुका है और माँ के पास आने की बेचैनी में उसे लगता है कि माँ जल्दी से टिकट क्यों नहीं भेज रही। भूखे-प्यासे रह कर पैसा जोड़ने के सिवा वह और क्या कर सकती है? बच्चे कहाँ समझते हैं माँ की मजबूरियाँ, उसकी बेबसी और उसकी चिंता।

बच्चे क्या जाने की मृत्यु क्या होती है? उन्हें तो छोटी बड़ी हर चीज चाहिए। माया की पोती रिया जब केवल ढाई वर्ष की थी तो दादा की बेशकीमती घड़ी लेने की जिद्द कर रही थी। माया ने हँसी- हँसी में कह दिया कि दादा जी के बाद ये सब उसी का तो है। रिया ने झट पूछा, 'दादी, वैन विल दादु डाई?' माया सन्न रह गई थी। अरुण ने बच्ची को एक थप्पड़ मार दिया। रोती हुई रिया को उषा घसीटकर अपने शयकक्ष में ले गई। क्रोध में ये कहते हुए 'आर यू मैड, अरुण?'

रिया बच्ची थी और नहीं जानती थी कि उसे घड़ी तो अवश्य मिल जाएगी पर वह अपने प्यारे दादू को खो देगी। वैसे कितने ही लोग हर रोज अपने संबंधियों के मरने की राह देखते हैं। अभी हाल ही में केवल एक हजार डॉलर्स के लिए दो पोतों ने मिलकर अपनी दादी की हत्या कर डाली। दहेज की वजह से बहुओं की हत्या का भी कारण यही लालच है। माया सोचती है कि अपने जीते जी ही बच्चों को सब दे देना चाहिए किन्तु हवस का तो कोई ठिकाना नहीं। जितना पैसा माँ-बाप दहेज में लगाते हैं कितना अच्छा हो कि यदि वे अपनी बच्चियों की पढ़ाई -लिखाई पर खर्च करें ताकि वे अपने पाँव पर खड़ी हो सकें। उनके बुढ़ापे की लाठी बन सकें , पर न जाने क्यों आज भी इसकी अपेक्षा तो बेटों से ही की जाती है।

दो बेटों के होते हुए भी आज माया कितनी अकेली है। हालाँकि वे माँ को अपने पास रखने को सहर्ष तैयार है पर उनका मन किसी के साथ रहने को माने तब न। एक महक ही है जो बिना नागा फोन पर उनका हाल- चाल पूछती रहती है। जब मौका मिलता है आ जाती है उनके सिर में तेल मलती है। उनके नए पुराने कपड़े छांटती है और अब भी उनसे चिपट कर सोती है। महक और पीटर कभी कभी उसे जबरदस्ती सेंट ऐंड्रूज ले जाते हैं किन्तु वही बेटियों के घर में रहने खाने की बात उसे खटकती है। यहाँ सासें दामादों के यहाँ रहती हैं। माया सोचती है कि वह दूसरों की निंदा करती है। जैसी भी है माया अब तो बदलने से रही। बुराईयाँ किसमें नहीं होती। अच्छाइयाँ भी उसमें कम नहीं। कोई जरा माया से सहायता माँग तो ले । चाहे उसके पास समय या हिम्मत न हो वह न नहीं कर सकती। उत्साह में तो वह ये भी भूल जाती है कि किसका काम है, क्या काम है ,उसके पास समय होगा भी कि नहीं। पूरे जोर -शोर से जुट जाती है। व्यवस्था का कोई भी पहलू मजाल है कि उसकी आँख से छूट जाए।

शवपेटिका की व्यवस्था माया कर ही चुकी थी। बच्चों पर छोड़ देती तो वे सबसे मंहगी लकड़ी का सुनहरी कुण्डों से जड़ा बक्सा खरीदते। शव को कपड़े में लपेटकर भी काम चलाया जा सकता है। भारत में लोग कितने यूज़र फ्रैंडलि हैं। हर चीज को रीसाईकिल करते हैं। भाड़ ही में तो झोंकना है, पानी में पैसा बहा देने का क्या फायदा? इससे तो वो पैसा किसी गरीब के काम आ जाए तो अच्छा हो। पर कौन देकर जाता है कुछ गरीबों को। कब से सोच रही है माया कि रॉयल स्कूल आफ ब्लांइड की सहायता करने को पर बात है कि बस टलती चली जाती है। वह कल अवश्य जाएगी। हालाँकि पिछले हफ्ते ही उसने कुछ धन हरे रामा

हरे कृष्णा वालों को दिया था । पर उस दान से उसे कुछ भी तृप्ति नहीं मिली थी। वह घंटों बैठी सोचती रही कि उन्हें कितना पैसा दान दे। सब कुछ उन्हीं को दे या दे भी कि नहीं।

नब्बे प्रतिशत तो सुना है इन इकट्ठा करने वालों की जेब में चला जाता है। गोरे लोग कितना दान करते हैं। वे तो कभी नहीं सोचते कि पैसा कहाँ जा रहा है। जिनके मन में लालच हो उन्हें तो बस कोई बहाना चाहिए। वह मन ही मन शर्मिन्दा हो उठी। वास्तव में तो वह अधिक से अधिक धन बच्चों के नाम छोड़ना चाहती है। हालाँकि वह जानती है कि उषा तो यही कहेगी 'हमारे हिस्से में बस इतना ही आया, मम्मा अरुण और विधि को जरूर अलग से दे गई होंगी।' विधि को कुछ भी दो वह यही कहती है, 'मम्मी जी पहले आप महक जीजी और भाभी से पसंद करवा लीजिए, हम बाद में ले लेंगे।' न जाने अरुण और उषा सदा यही क्यों सोचेते हैं कि माया वरुण और विधि को ही अधिक चाहती हैं। कोई माँ से पूछे कि उसे अपनी कौन सी आँख प्यारी है?

माया को लगता है कि जैसे-जैसे व्यक्ति उम्र में बड़ा होता जाता है अनासक्त होने के बजाय, आसक्त होता जाता है। जहाँ विधि और महक को पैसे अथवा चीजों की जरा परवाह नहीं । वहीं उषा को और स्वयं उसे छोटी-छोटी चीजों से लगाव है। उन्हें ये भी चिंता रहती है कि देन-लेन से कौन कितना प्रसन्न होगा। अस्थाई और क्षणिक प्रसन्नता के लिए इतना आयोजन -प्रयोजन और परम आनंद के लिए कुछ भी नहीं किन्तु आनंद भी तो इन्हीं रिश्तों से जुड़ा है। जहाँ जा रही है माया वहाँ दु:ख -सुख के मायने शायद दूसरे हों। शायद वहाँ दु:ख -सुख हों ही नहीं। पिछले साल ऋषिकेश में वह दीपक चोपड़ा से मिली थी। आनंदा में वह अपने पच्चीस अनुयायियों के साथ ठहरे हुए थे। मृत्यु के विषय पर उनका एक व्याखान सुनकर माया को लगा कि जीवन-मृत्यु जैसे पेचीदा विषयों को समझना कितना सरल था। 'फूल खिलते हैं मुर्झा जाते हैं और फिर खिलते हैं। इस पृथ्वी पर जो भी जन्म लेता है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है पर उसका पुनर्जन्म भी उतना निश्चित है।' माया बस यही नहीं समझ पाती है कि ऋषि मुनियों की बातें उसके मस्तिष्क में टिक क्यों नहीं पातीं? क्योंकि शायद ये संसार है और यहाँ की हर चीज क्षणिक है, क्षणभंगुर है। किन्तु प्रश्न ये उठता है कि मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच के समय में क्या होता है?

मृत्यु के उपरांत क्या होगा? इसका भय शायद दूसरों को अधिक होता हो। तभी तो इस वक्त माया को स्वयं कोई भय नहीं। जबकि पिछले दस बारह वर्षों में वह तब यही सोचती रही थी कि मृत्यु के बाद क्या होता होगा और ये भी कि क्या बेहतर है मृतक को जलाना, जमीन के नीचे दबाना या चीलों को खिलाना। आबादी बढ़ती जा रही है इतने सारे मृतकों को पृथ्वी कैसे और कब तक अपने में जज़्ब कर पायेगी। स्वयं वह जलाने की पक्षधर रही है। चीलों द्वारा नोच खसोट मृतक का अपमान नहीं तो और क्या है? किन्तु इस जाति की भावना तो देखिए शायद ये ही लोग अन्ततोगत्वा 'परम पिता परमात्मा' में समा जाते हों। 'परम पिता परमात्मा' से उसे याद आई अपने पिता की जो सारा जीवन रामनाम की माला जपते रहे। हालाँकि उनके क्रोध आत्मरतिक और माँसाहारी प्रवृत्ति से परेशान उनका परिवार सदा यही सोचता रहा कि केवल 'परम पिता परमात्मा' ही उनकी रक्षा कर सकते थे और शायद उन्होंने रक्षा की भी। नहीं तो ऐसी अच्छी मौत किसे नसीब होती है?

माया के पति हरीश की मृत्यु हुए पाँच वर्ष होने को आए। उन्हें दफ्तर में दिल का दौरा पड़ा और एम्बुलैंस के आने से पहले ही उन्होंने दम तोड़ दिया। उनके शव को घंटों निहारती बैठी रही थी माया कि अब सांस आई कि तब। नर्सों के विश्वास दिलाने के बावजूद कि हरीश अब नहीं रहे। पढ़ाई इम्तहान या दफ्तर के सिलसिले में जब भी हरीश को कहीं जाना पड़ा, वह माया को अपने खर्चे पर साथ लेकर गए। वह स्तब्ध थी कि बिना कुछ कहे वह उसे अकेले कैसे छोड़ के चले गए। अब क्या बचा था केवल चौखट, दरवाजे, दीवारें और इन सबसे सिर मारती माया। अरुण और उषा तो पहले ही अलग घर बसा चुके थे। अठारह वर्ष की आयु में विवाह करके महक अपने पति पीटर के साथ स्कॉटलैंड में जा बसी थी और वरुण बर्मिंघम में पढ़ रहा था। आस -पड़ौस में भी किसी को विश्वास नहीं हो रहा था कि हरीश यूँ चल बसेंगे। संबंधियों और पड़ोसियों ने मिलकर बारी लगा रखी थी। कोई न कोई हमेशा घर में बना रहता कि न जाने माया को कब और क्या आवश्यकता आन पड़े। हफ्तों तक परिवार के लिए ही नहीं अपितु मेहमानों के लिए भी नियमित खाना-पीना आता रहा। भजनों के नए-नए सीडीज़ और कैसेट्स बजते रहे, दिये में घी डाला जाता रहा एक सप्ताह के अंदर ही माया ने अपने दुख पर पूरी तरह काबू पा लिया था और घर परिवार अब उसके पूरे नियंत्रण में था।

नए काले पिन्स ,सूटों में बेटों, दामादों और पोते को देख माया फूली नहीं समा रही थी। विवाह की पच्चीसवीं वर्षगाँठ पर हरीश ने उसे हीरे के छोटे-छोटे बुँदें और नेकलेस दिये थे जो बहुओं द्वारा पहनाई उस मंहगी सफेद साड़ी के साथ कुछ अधिक ही चमक रहे थे। बहुयें स्वयं लिपटी थीं काली साड़ियों में जिस पर चाँदी के धागों का हल्का बॉर्डर था। माया ने ही कहा था कि चाहे कितना भी बुरा अवसर क्यों न हो सुहागने काला कपड़ा नहीं पहनती।

घर में अवलोकनार्थ रखे हरीश के शव को देख महक का बेटा आर्यन बार-बार 'हेलो दादु' पुकारे जा रहा था। आर्यान की हरीश से खूब छनती थी। उनसे मिलने वह महीने में एक या दो बार लंदन से सेंट एंड्रूज जाते थे। जब कभी आर्यन शरारत करता, वह उससे कुट्टी कर लिया करते और जहाँ उसने गाल फुलाए कि हुई दादु की अब्बा। 'वाऐ इज़ दादु नॉट टॉकिंग टु मी'। उसकी आँखों में आँसू थे। 'ममा, टैल दादु आई एम नॉट नौटी ऐनी मोर।' माया कुछ

न कह सकी। उसे गोदी में ले पीटर बाहर चला गया।

हरीश के फूलों को गंगा में विसर्जन करने के लिए पूरा परिवार हरिद्वार पहुँचा था। माया का भारी भरकम भाई पारस यदि उन सबको नहीं बचाता तो पंडितों की धक्का- मुक्की में घिरे इस परिवार का राम नाम सत्य हो जाता। वरुण और विधि तो पहली बार भारत आए थे। उनकी 'एक्सक्यूज़ मी एक्सक्यूज़ मी' भी किसी काम नहीं आई थी। माया ने सोचा कि हरीश की मृत्यु यदि भारत में होती और उनका क्रिया कर्म यहाँ करना पड़ा तो बच्चों के सब्र का बाँध तो अवश्य टूट जाता। हरीश को यदि पिता का कपाल फोड़ना पड़ता तो न जाने क्या होता?

शायद समय आ गया था माया के वापिस संसार में लिप्त हो जाने का कि एक दिन उसकी पड़ोसन जयश्री उसे जिद्द कर अपने साथ घसीट कर ले गई। ऐरे- गैरे नत्थू खैरे सभी बाबाओं के सतसंगों में जाती है जयश्री। माया को इन बाबाओं और माताओं पर कोई श्रद्धा नहीं किन्तु इस बार वह जयश्री को टाल नहीं पाई। एक बड़े नामी योगी लंदन आए हुए थे। भीड़ में बैठी हुई माया को इंगित करके जब बाबा ने पूछा 'बेटी किसके शोक में डूबी हो?' माया ने सोचा कि बाबा को उसकी रोती - धोती शक्ल से ही पता लग गया होगा कि यह नमूना कुछ ज्यादा ही दुखी है। इसमें कौन सी बड़ी बात थी। शायद माया के विधवा होने की बात उन्हें जयश्री ने बताई हो। खैर जब बाबा मन की बात जानते हैं तो वह माया का कष्ट भी जान ही गए होंगे। जयश्री उसे पकड़ कर बाबा के ठीक आगे ले गई। बाबा इसका हजबैंड ऑफ थेई गया छे , कोई नई साथे बात करती न थी, अने कोई ने मलती न थी।' जयश्री के हजबेंड आफ थेई गया छे पर माया को हँसी आ गई और बाबा भी मुस्करा पड़े और जयश्री प्रसन्न थी कि माया के कारण उसे बाबा के नजदीक जाने का मौका मिल गया था।

'अपनी हानि को तो बेटी सभी रोते हैं, कभी उनकी भी सोचो जो प्रभु के पास है, उनके लाभ में भी तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए।' माया को लगा कि सचमुच वह कितनी स्वार्थी थी कि उसने हरीश के विषय में तो कभी सोचा ही नहीं। जब तक बाबा लंदन में थे, माया नियमित रूप से उनके पास योगासन सीखने जाती रही। किन्तु उसके बाद न तो बाबा ने कुछ कहा, न माया ने कुछ पूछा। उसके दिल में एक सुकून व्याप्त हो गया था जैसे हरीश फिर उसके साथ थे।

शादी की हर वर्षगाँठ पर हरीश मोगरे के फूलों का हार और गजरे माया के लिए विशेष तौर पर बनवाते थे। माया ने सोचा कि यदि हरीश जीवित होते तो उसकी शव पेटिका को मोगरे के फूलों से लाद देते। सगे-संबंधी गुलदस्ते लेकर आएंगे। नहीं होंगे तो बस उनके भिजवाए मोगरे के फूल। कितनी अधूरी और फीकी लगेगी माया की शव यात्रा। शायद हरीश उसके इंतजार में हों। वह हुलस उठी। पर क्या करे? कोई हलक में उंगली डाल कर तो आत्महत्या नहीं कर लेता। कर भी ले तो जो थोड़ा बहुत उनसे मिलने का मौका है माया कहीं वो भी न गंवा दे। हालाँकि हरीश स्वयं एक जाने माने वकील थे, वह उसे 'मी लौर्ड' कहकर पुकारते थे क्योंकि बाल की खाल उतारने की आदी थी माया। हरीश की याद उसे कभी-कभी दीवाना बना देती है। दिल है कि संभलता ही नहीं, 'याद आये वो यूँ जैसे, दुखती पाँव बिवाई जी...।'

माँ बचपन में माया को हरीशचंद्र तारामती के अमर प्रेम की कहानी सुनाती थी। वही तारामती जो अपने पति को यमराज से भी छुड़ा लाई थी। माया ने हाल ही में बी. बी .सी. पर एक फिल्म देखी थी जो एक ऐसी बीमारी के विषय में थी जिसमें रोगी बिल्कुल मृत दिखाई पड़ता है। डॉक्टरों को भी उसमें जीवन का कोई लक्षण नहीं दिखाई देता और जीते जी उसे मुर्दाघर में डाल दिया जाता है। एक ऐसी ही महिला अब सोने से भी डरती है कि फिर न उसे मृत समझ के मुर्दाघर में डाल दिया जाए। माया को लगा कि सत्यवान के साथ भी कुछ ऐसा घटा होगा। तारामती को पूर्ण विश्वास होगा तभी तो वह पति के शव को गोद में लेकर बैठी रही। जो भी हो माया का प्रेम अमर है और हरीश आज भी उसके साथ है। इस विचार मात्र से वह सिहर उठी। मृत्यु के पश्चात् वह उनसे अवश्य मिलेगी। वह इंतजार कर रहे हैं उसका उस पार। 'याद आये वो यूँ जैसे, दुखती पाँव बिवाई जी....।'

भाव विह्वल माया ने अंत्येष्टि निदेशक को पत्र लिखकर उसे मोगरे के फूलों के छल्ले पर 'स्वागतम माया सस्नेह हरीश' लिखवाने की व्यवस्था करने को कह दिया। यह बात भला वह किससे कहती, कहती तो लोग समझते कि उसका सिर फिर गया है। कोई मृत व्यक्ति भी फूल भिजवाता है किसी को? पर कितना मजा आयेगा जब लोग मोगरे के फूलों के साथ हरीश का नाम देखेंगे अंतिम बार, दोनों के नाम एक साथ। वह रोमांचित हो उठी और ये सोचकर कि 'वैन इन रोम, वी रोमन्ज़' उसने एक मरसेडीज़ भी बुक करवा दी। विदेशों में विवाह के अवसर पर अथवा शव यात्रा में काली रॉल्सरॉएज़ बुलवाना पॉश समझा जाता है। हरीश होते तो मरसडीज़ों की कतार खड़ी होती। माया की अर्थी भी शान से उठनी चाहिए। बच्चों को भी अच्छा लगेगा। काली लंबी रॉल्सरौयज पर मोगरे के फूल कितने भव्य दिखेंगे। गली कूचों में लोग ठिठक के रह जाएँगे और सराहेंगे इस शवयात्रा को।

मृत्यु का भय नहीं सता रहा माया को। जो होना है सो तो होकर ही रहेगा। नर्क, स्वर्ग, पुनर्जन्म या 'कुछ नहीं'। 'कुछ नहीं' के सांप को तो वह मन में ही दबाती रहती है और शायद उनकी अपनी बीन पर ही फन उठाये यह भय जब तब लहराने लगता है। लोगों को उसने कहते सुना है कि कहीं आत्मा खालीपन में भटकती न रहे। भला ये भी कोई बात हुई। देवग्रंथों के अनुसार आत्मा को न तो कोई मार सकता है,न ही कोई दु:ख पहुँचा सकता है तो फिर काहे का डर। डर तो बस माया को है पुनर्जन्म से वही पढ़ाई -लिखाई

विवाह - बच्चे और फिर से मृत्यु। पर क्या पता उसे अगली योनि मनुष्य की मिले या न मिले। जिस रूप में भी पैदा हो बस भगवान मनुष्य जन्म की याद भुला दें। क्या जाने कीड़े मकोड़े और जानवरों को याद रहता हो अपना पिछला जन्म। शायद इसी का नाम नर्क हो कर्मों का फल। माया को लगता है कि उन्हें अपने पिछले जन्म की कुछ- कुछ याद है। वैसे तो मनुष्य का मस्तिष्क न जाने क्या-क्या खेल दिखाता है किन्तु यदि यह बात सच है तो दो बार वह मनुष्य योनि में जन्म ले चुकी है और अब मनुष्य योनि का संयोग कम ही है। खैर जो भी होगा देखा जाएगा। अभी से परेशान होने का क्या फायदा। इस आखिरी वक्त में भजन गाने से तो भगवान प्रसन्न होने से रहे। तैयारी भी करे तो क्या और कैसी?

जब भी माया किसी यात्रा पर निकलती हैं ढेर सी तैयारी करके चलती है। हर तरह की बीमारी की दवाएँ, गरम पानी की बोतलें ,डिब्बे का खाना, अचार-मुरब्बे, माचिस, चाकू, स्क्रू ड्राईवर असमय की ठंड के लिए गरम कपड़े ,कंबल, ब्रांडी अतिरिक्त पेट्रौल का कनस्तर और न जाने क्या- क्या। जब वह लौटती है सारे सामान के साथ लदी-फदी तो बच्चे हँसते हैं, 'डिडन्ट वी टैल यू टू ट्रैवल लाइट।' पर किसी चीज की जरूरत पड़ जाती तो माया को किसी का मुँह तो नहीं ताकना पड़ता। अब चाहे अंगारों पर चलना पड़े या आग पर, इस यात्रा पर उसे खाली हाथ ही निकलना है। काश कि उसने 'ट्रैवल लाइट' की आदत डाल ली होती तो आज उसे इस बेचैनी से दो - चार न होना पड़ता।

समय की पाबंद, माया बिल्कुल तैयार बैठी है। जैसे बस और इंतजार नहीं कर पायेगी। क्यूं कर लोग समय का पालन नहीं करते। पर मृत्यु को दोष नहीं दिया जा सकता और न ही डॉक्टरों को। कोई समय तो तय नहीं किया गया था। पहली बार उसके दिमाग में ये बात आई कि डॉक्टर गलत भी तो हो सकता है। थोड़ी सी आशा बँधी किन्तु जीवन की नन्ही सी किरण भी उसे अधिक उत्तेजित न कर पाई। डॉक्टर ने कह दिया , माया ने सुन लिया और चुपचाप चली आई। एक प्रश्न तक नहीं पूछा। डॉक्टर ने उससे कोई सहानुभूति भी नहीं प्रकट की। यहाँ तो टर्मनली इल रोगियों को विशेष परामर्श की सुविधा दी जाती है। एक जमाना था जब रोगियों को बुरे समाचार से वंचित रखा जाता था किन्तु अब तो विशेषज्ञों का मत है कि रोगी और उसके संबंधियों को सीधे-सीधे बता देना उचित है।

काश ! कि माया बिजली के बटन की तरह जीवन का स्विच खट से बंद कर पाती क्योंकि वह सचमुच तैयार है शरीर त्यागने को। बेकार बैठी है और उसकी ऊर्जा व्यर्थ जा रही है। शायद उसे इसकी आवश्यकता पड़े मृत्यु के उपरांत। पर उसके बस में कुछ नहीं है।

मनुष्य के बस में कुछ भी नहीं है। माया सोचती है कि आँधी तूफान और भूचाल आदि के माध्यम से प्रकृति अपने प्राणियों की संख्या नियंत्रित करती रहती है ,जिसे भगवान का कोप समझ कर झेलते रहते हैं पृथ्वी-वासी। जो समझ से परे हो उसे भगवान का नाम दें या किसी बुद्धिमान अभिकल्पक का क्योंकि जगत की संरचना के पीछे एक प्रतिशत संदेह तो बना ही हुआ है। इसी विषय को लेकर अमेरिका जैसे विकासशील देश में आज भी लोगों के बीच छुटपुट घटनाएँ सुनने में आती हैं जिनमें कोई डार्विन के विकासवादी सिद्धांत को कोसता है तो कोई विज्ञान को। माया के पल्ले जब कुछ नहीं पड़ता तो वह गाने लगती है, 'कोई तो बता दे जल नीर की सिया प्यासी है।' ये प्यास जीते जी तो बुझने से रही। शायद मर के ही मिलना हो उस बुद्धिमान अभिकल्पक से। किसी से मिलेगी अवश्य माया और हरीश का पता ठिकाना भी मालूम करके रहेगी।

श्राद्धों में माया की दादी ,स्वर्गीय दादा और परिवार के अन्य मृतकों की शांति के लिए पंडितों को दान देतीं और भोजन कराती थी। पिता की बात याद कर माया अनायास-मुस्करा उठी। जब भी माँ श्राद्ध के भोजन का प्रबंध करती वह कहती कि उनके पिता और दादा की आत्मा को शांति पहुँचानी है तो कोफ्ते पकाओ, मुर्ग मुसल्लम बनवाओ। पति की मृत्यु के उपरांत माँ जो अपनी सास को दकियानूसी करार देती आयी थी स्वयं अंधविद्यालयों में कंबल और भोजन आदि बाँटने लगी ये कहकर कि उनकी आत्मा को शांति मिले न मिले किसी गरीब का कल्याण तो हो ही जाएगा। जब शरीर ही नहीं रहा तो कैसी शांति और कैसा क्लांति पर वही बात कि दिल को समझाने को गालिब ख्याल अच्छा है। हालाँकि पंडितों को जजमानों की क्या कमी बहुत से बेवकूफ हैं दुनिया में यहाँ लंदन में भी। हरीश की प्रत्येक बरसी पर माया स्वयं पूजा करवाती है। अंधविद्यालयों और अन्य संस्थाओं को दान देती है। जहां तक हरीश का प्रश्न है वह कोई खतरा नहीं उठाना चाहती। क्या पता किस दान से और क्यूँकर पति को चैन मिल जाए। अगर ये सब करने से कोई फर्क नहीं पड़ता तो भी पैसा किसी अच्छे काम में ही तो लगा। पूजा पाठ एवं दान करने का शायद यही औचित्य हो।

बनारस से लाई हुई गंगाजल की बोतल को माया ने अपने सिरहाने रख लिया है। डायरी में उसने झटपट एक और टिप्पणी जोड़ दी कि यदि किसी कारणवश वह स्वयं गंगाजल नहीं पी पाए तो जो भी उसे मरणोपरांत देखे उसके मुँह में गंगाजल की कुछ बूँदे टपका दे और हाँ ये भी कि उसकी अस्थियाँ गंगा की बजाए रिवर थेम्स में भी डाली जा सकती हैं। एक कहावत है कि मन चंगा तो कठौती में गंगा। फिर भी अंदर या बाहर गंगा तो उसके संग होगी ही।

बरसों पहले किसी वैज्ञानिक ने विष का स्वाद जानने के लिए अपने ऊपर एक प्रयोग किया था। जीभ पर ज़हर रखते ही वह मर गया और उसका प्रयोग सफल नहीं हो पाया। माया ने सोचा कि यदि सभी मरणासन्न लोग कोई एक प्रयोग करके मरें तो शायद कई गुत्थियाँ सुलझ जाएँ। जैसे कि वह जानना चाहती है कि मरते समय व्यक्ति को कैसा अनुभव होता है शांति का या अशांन्ति का

उसने निर्णय लिया कि वह अपनी तर्जनी पर लाल रंग यानि अशांति और बीच की उंगली पर हरा रंग यानि की शांति का रंग लगा के इंतजार करेगी मरने का। पलंग पर एक नोट लिख कर छोड़ जाएगी बच्चों के लिए चादर पर जो भी रंग रगड़ा हुआ मिले उसके प्रयोग का निष्कर्ष वही होगा। मन में ढेरों दुविधाएँ उठीं किन्तु माया ने उन्हें एक ही बार में दबा दिया कि प्रयत्न करने में क्या जाता है? इस विषय पर शायद उसे किसी की सहायता की आवश्यकता पड़े। पारस होता तो वे दोनों बैठकर इस प्रयोग की बारीकियों में उतरते किन्तु इस बारे में सोच कर माया और समय व्यर्थ नहीं करना चाहती।

माया की नज़र फिर पर्दों पर जा ठहरी। घर के धुले पर्दों में मजा नहीं आता। ड्राईक्लीनर्स के धुले और भारी इस्त्री किए पर्दे गंदे भी कम होते हैं। ममता इस शनिवार को आये कि न आए। पिछले हफ्ते ही वह बता रही थी कि नारायण ने जब गिरोह के सरदार से माँ के पास जाने की अनुमति मांगी तो उसने न केवल साफ मना कर दिया परन्तु उसे जान से मार देने की धमकी भी दे डाली। माया ने सोचा कि शाम को फोन करके ममता को बुला लेगी ओर पैसे देकर कहेगी कि जाके अपने बेटे को छुड़ा ले। कितनी खुश हो जायेगी ममता। अपने इस निर्णय पर माया सचमुच बेहद प्रसन्न थी।

माया पर्दे उतारने को स्टूल पर चढ़ी ही थी कि घंटी बजी। इस समय कौन हो सकता है, उसने तो किसी को बुलाया नहीं था। कहीं वह किसी को बुलाकर भूल न गई हो। दरवाजा खोला तो देखा बाहर ममता खड़ी थी।

'तू हजार बरस जिऐगी ममता, अभी मैं तुझे ही याद कर रही थी।' वह चहकती हुई बोली।

'मैडम जी वो नारायण है न, वो...' बद हवासी में वह ठीक से बोल भी नहीं पा रही थी।

'हाँ- हाँ क्या हुआ उसे।'

'उसका एक्सीडेंट...' माया यदि उसे सँभाल न लेती तो ममता वहीं ढेर हो जाती। आँसू थे कि रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे और हिचकियों के मारे उसका बोलना मुहाल था। उसके आधे -अधूरे वाक्यों से माया इस नतीजे पर पहुँची कि नारायण के साथ हुए इस हादसे के पीछे उन गुंडों का ही हाथ है। कहीं से उन्हें पता चल गया था कि वह चुपचाप लंदन जा रहा है कि बस उन्होंने उसे कार के नीचे कुचलने की कोशिश की और फिर अस्पताल में आकर उसे धमकी दी कि इस बार तो टाँगें ही तोड़ी हैं ,अगली बार वे उसे जान से मरवा सकते हैं। माया ने ममता के हाथ से निचुड़ा- पुचड़ा कागज लिया, जिस पर उसके भाई सर्वेश का नम्बर लिखा हुआ था। नम्बर मिलाया तो सर्वेश ने भी वही सब दोहरा दिया जो ममता बता रही थी। इस अनुरोध के साथ कि मैडम आप तो जी बस बहन को प्लेन में बैठा दें नारायण की हालत ठीक नहीं है मैडम जी।' वह भी बहुत घबराया हुआ लग रहा था जैसे कि उसकी अपनी जान पर बनी हो। भाई से बात करके तो ममता के सब्र का बाँध मानो टूट ही गया।

'अब मैं जी कर क्या करूंगी मैडम। मैं तो उसी के लिए इकट्ठा कर रही थी पैसा। इससे तो मैं उसके साथ ही जीती मरती। अब इस पैसे का क्या फायदा।' कहकर उसने अपनी सारी जमा पूंजी माया के कदमों में डाल दी। माया ने उसे सीने से लगा के तसल्ली देनी चाही किन्तु वह तो यूँ रोये चली जा रही थी जैसे दुनिया में उसका कुछ न बचा हो।

माया ने झटपट अपने ट्रेवल एजेन्ट को फोन किया और जब वह ममता के लिए टिकटें आरक्षित करवा रही थी तो उसने सोचा क्यों न उसके साथ वह स्वयं भी पटना चली जाए। पटना जैसी जगह में किसी को पटाना होगा , किसी से पटना होगा। किसी को मनाना होगा तो किसी को हटाना होगा। ममता अभी इस हालत में नहीं है कि नारायण की कोई मदद कर सके। कहीं इन गुंडों के चक्कर में आकर वह न केवल अपना मेहनत से कमाया सारा धन ही गँवा दे बल्कि अपनी जान से भी हाथ धो बैठे। ऐसे समय में धैर्य नियंत्रण और कूटनीति से काम लेना होगा। सीधी सादी ममता को तो शायद इन शब्दों का अर्थ भी नहीं पता होगा।

ममता ने जब सुना कि मैडम उसके साथ पटना चल रही हैं तो उसके चेहरे पर आश्चर्य, कौतहूल और अनुग्रह के भावों की छटा बस देखते ही बनती थी। स्पष्टत: माया के दिमाग में एक योजना बन रही थी। ममता को रसोई में व्यस्त करके वह स्वयं कम्प्यूटर खोलकर बैठ गई। उसने वेबसाईट पर एक पाँच सितारा होटल में दो कमरे ,एक बड़ी जीप और ड्राइवर का इंतज़ाम कर लिया। फोन पर पारस को उसने एक अच्छे वकील और सुरक्षा संबन्धित प्रहरियों का प्रबंध करने की हिदायत भी दे दी जो इन्हें एयरपोर्ट पर उतरते ही मिल जाएँ ताकि बिना समय गँवाए रास्ते में ही बात की जा सके। माया ने सोचा कि अच्छा हुआ कि बच्चे यहाँ नहीं हैं। वे उसे कभी ये जोखिम नहीं उठाने देते। पारस को भी रहस्यपूर्ण कारनामों में दिलचस्पी है इसीलिए उसने अधिक चूं - चपड़ नहीं की। पटना के नाम पर वह हिचका अवश्य था किन्तु जब माया ने कहा 'मैं पटना जा रही हूँ कोई प्रश्न नहीं पूछना।' उसके पास कोई चारा नहीं था सिवाय माया के कथानुसार प्रबंध करने के। वह बोला, 'ठीक है , मैं भी पटना आ रहा हूँ और तुम भी अब कोई प्रश्न नहीं पूछना।'

माया चिंतित थी कि दो महिलाएँ गुंडों के गिरोह का सामना कैसे कर पाएँगी। किन्तु पारस के आ मिलने से वह आश्वस्त हो गई। बचपन में इस जोड़ी ने परिवार की नाक में दम कर रखा था। एक बार दोनों ने आटा फर्श पर बिछा कर पाँव के निशान से चोर पकड़ के माँ के सम्मुख खड़ा कर दिया था। हाँ वह अलग बात थी कि माँ को पता था कि चोर घर का नौकर ही था जो रात को छिप-छिप कर मिठाई खाता था और शक इन दोनों पर किया जाता था।

'शर्लौक होम्स', 'मर्डर शी रोट' और 'कोलंबो' जैसे

रहस्यपूर्ण टी.वी. धारावाहिकों की दीवानी माया को जीवन में पहली बार जोखिम उठाने का मौका मिला है जिसे वह
आसानी से नहीं गँवाने वाली। कहाँ वह मृत्यु से उबर नहीं पा रही थी और कहाँ अब उसे कुछ याद न था सिवाय इसके कि नारायण को कैसे बचाया जा सकता है। पट ना और पटना के गुंडों से निडर वह सुबह की फ्लाइट का इंतजार कर रही है। ममता से अधिक बेचैनी उसे है। सख्त पहरे में वह नारायण को दिल्ली ले जाएगी वह ठीक हो जाएगा तो पारस की फैक्टरी में ही किसी काम पर लग जाएगा।

कहाँ ममता आत्महत्या करने की सोच रही थी और कहाँ अब उसे विश्वास हो चला था कि नारायण की बाल मजदूरी के दिन अब पूरे हो गए थे। कर्मठ ममता को काम की भला क्या कमी। वैसे भी जब तक माया जीवित है तब तक तो ममता उसके साथ रहेगी।

तीन दिन में मृत्यु वाला सपना इतना सजीव था कि माया अपनी मृत्यु के लिए पूरी तरह तैयार थी किन्तु इस वास्तविक घटना ने उसे पूरी तरह जिला दिया था। वह कितनी भाग्यशाली है कि जीवन के उद्देश्य के साथ-साथ उसे दिशा भी मिल गई। उसके शरीर का रोम - रोम स्पन्दित है और प्रत्येक अंग फड़क रहा है। उसे लगा कि इतनी जिंदा तो वह जीवन में पहले कभी नहीं रही।

जनम – जनम के फेरे

लावण्या शाह (अमेरिका)

पेरिस एयर पोर्ट से जब तक हवाई जहाज ने उड़ान भरी, शोभना , अपना आँसुओं से गीला चेहरा , अपनी सीट के साथ लगी खिड़की से सटाये, विवशता, क्षोभ और हताशा के भावों में डूबती उतराती रही। फिर अपना छोटा सा मखमली रुमाल,कोट की जेब से निकाल कर उसने लाल हो रही आँखों से लगाया। आँसू सोखे ही थे कि फिर कुछ बूँदें निकलकर बह चलीं! पेरिस हवाई अड्डे की रोशनियाँ विमान के टेक ऑफ की तेज गति के साथ उड़ान भरते ही धुँधलाने लगीं... उसने आसपास नज़रें घुमाईं तो देखा कि कुछ यात्री अपनी सीटों के हत्थों को कस कर थामे हुए थे। कुछ लोगों ने आँखें मींच लीं थीं । किसी ने दाँत से ओठों को दबा रखा था .. तो कुछ लोग बुदबुदा रहे थे! शायद प्रार्थना कर रहे हों ! हर मज़हब के देवता से दया की भीख माँग रहे थे ऐसे समय में फँसे ये सारे इन्सान जो उसके सहयात्री थे। शोभना ने मन ही मन कहा, " ये पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बढ़ती जा रही यान की दूरी का प्रभाव था जो ये हाल किये था तब ,एक माँ मैं भी तो हूँ ! मुझसे अलग होते मेरे बच्चों को क्या मेरी कमी नहीं खलती?"

शोभना पर विमान की उड़ान का कोई खास असर नहीं हुआ । वह अपने आसपास की घटना से मानो बेखबर थी क्योंकि उसका मन तो अब भी भारत में अपनी ससुराल के द्वार पर विवश होकर मानों वहीं ठिठका हुआ, अब भी खड़ा था ! शोभना पूरे 10 सालों के बाद ही भारत लौटी थी। भारत ! उसका प्रिय भारत मानों किसी दूसरे सौर मँडल का कोई ग्रह , या एक सितारा बन गया था , उसके लिये ! उस की पहुँच के बाहर ! अरे ! सितारे और सारे ग्रह , नक्षत्र तो वो देख भी लेती थी स्याह होते आकाश में टिमटिमाते हुए। जब भी , देर से, सारा दिन काम करके थकी - माँदी अपने वृद्ध माता , पिता के साथ जब वह कोन्डो (स्नद्यडुहव) के लिये लौटती थी, तब नज़रें आकाश की ओर उठ जातीं और वो सोचती, बच्चे भारत में शायद सूर्य को देख रहे होंगे अगर यहाँ रात घिर आयी है तो ! भारत तो बस अब उसके सपनों में ही दीख जाता था और दीखाई देते थे उसके दो बेटे! दीव्यांश और छोटा अंशुल !

कितने- कितने जतन करके उन्हें बड़ा किया था शोभना ने! हाँ सास मधुरा माहेश्वरी जी, भी अपने दोनों पोतों पर जान छिड़कतीं थी । देवरजी सोहन भैया भी कितना प्यार करते थे

दोनों बच्चों को !
" हमारे प्रिंस हैं ये" हमेशा ऐसा ही कहा करते थे ! उस के साथ शोभना को ये भी याद आया कि फैले हुए भरे पूरे ससुराल के कुनबे के रीति --रिवाज़ों , त्योहारों, साल गिरह के जश्न जैसे उत्सवों के साथ उसे 24 घंटों का दिन भी कम पड़ जाया करता था। 20,25 लोगों का भोजन, चाय, नाश्ता तैयार करवाना, बड़ी बहू होने के नाते हर धार्मिक अनुष्ठान में उसका मौजूद होना अनिवार्य था , साथ -साथ बड़ों की आवभगत, मेहमानों के लिये सारी सुख सुविधा जुटाना ये सारे काम उसी के जिम्मे हुआ करते थे। रात देर से ,चौका निपटाकर वह सोने जाती तब तक उसके पति धर्मेश, पीठ किये सो रहे होते - कई बार, खिन्न मन से चारपाई पर लेटते मन में उभरे अवसाद को वह कहीं गहरे गाड़ देती और ईश्वर को नमन कर के थक के चूर हुई शोभना को कब नींद आ घेरती उसे पता भी नहीं चलता !

- कब दिन बीते, साल गुज़रे, उसे पता ही न चला ! पर, शोभना का वैवाहिक जीवन मँझधार में डूबती उतराती नैया की मानिन्द हिचकोले खा रहा था। इस बात से शोभना मुँह मोड़ न पाती थी। धार्मिक उत्सवों पर, परिवार के लिये सास -ससुरजी पानी की तरह पैसा बहा देते और जब- जब उसे बच्चों की स्कूल के लिये किताब, या फीस देनी होती या डाक्टर परिमल सेठना के पास उन्हें ले जाना होता , या उसे खुद की जरुरतों के लिये केमिस्ट की दुकान जाना पड़ता और वह अपने पति से पैसों की माँग करती, धर्मेश दो टूक जवाब देते, " मेरे पास कहाँ है पैसा ! सारा काम काज बाबूजी देखते हैं ,उन्हीं से जाकर माँग लो !"

कई बार वह हार कर बाबूजी के पास जाती या मधुरा जी से कहती , तब भी , वे लोग किसी ना किसी काम के बहाने यहाँ वहाँ हो जाते। पैसा जब माँगने पर भी न मिलता तब शोभना की हताशा खीझ में बदल जाती ! कई बार ऐसे बहाने भी बनाये जाते, " कुछ दिनों बाद बिल देंगे बहू कुछ दिनों बाद ले जाना ।" ऐसा बार- बार होता तब उसे भी सँकोच होने लगा था। शोभना भीतर ही भीतर तिलमिलाने लगती, " कोल्हू का बैल बनी बड़ी बहू की बस यही औकात है ! आखिर हर बार मिन्नतें करनी होंगी मुझे ? बच्चों से जब ये सभी प्यार करते हैं तब उनकी देखभाल, शिक्षा की जिम्मेदारी भी क्या संयुक्त परिवार का जिम्मा नहीं ? ये कहाँ का न्याय है ? नहीं , ये सरासर अन्याय है ! कब तक इस तरह घुटती रहूँगी मैं ?"

वो सोच - सोच कर परेशान हो जाती ! संयुक्त परिवारों में ऐसे भी होता है, किसी का दम घुट जाता है तो कोई जिसके हाथ में सत्ता की बागडोर है, पैसों का व्यवहार जो थामे हुए हो वे मौज करते हैं ,मनमानी करते हैं और शांत घरों में, सभ्य रीत से फैलता है - एकाकीपन !

ये विडम्बना ही तो है आधुनिक युग की ! कबीर जी ने सही कहा था, " दो पाटन के बीच में बाकी बचा न कोई !"

यहाँ कोई अदालत या कचहरी नहीं जो न्याय, व्यवस्था देखे - एक दिन जब उसने अपनी माँ से दबी जबान में कहा कि, माँ , मुझे रुपयों की ज़रूरत है।

तब रमा देवी भाँप गई कि, उनकी लाड़ली बिटिया दो कुलों की लाज बचाये, आज माँ से मांग रही है अपनी बिखरती गृहस्थी के बचाव के लिये सहारा और माँ ने फौरन कुछ रुपये अलमारी से निकाल कर उसके हाथों पे रखते हुए, शोभना की हथेली को उन पैसों पर अपने कांपते हाथों से ढाँक दिया था , बेटी की इज्जत माँ ही तो ढँकती है आखिर!

माँ के कहने पर कुछ दिनों बाद उसके पिताजी एक दिन उससे मिलने आये थे उसकी ससुराल और आवभगत से निपटकर शोभना को अपने साथ एक स्थानीय बैंक में ले जाकर उन्होंने पूरे 50000 हज़ार रुपये जमा करवाये और कहा था , " बेटा, जब भी ज़रुरत हो इसी खाते से ले लेना - और प्यार से उसका माथा सहलाते हुए, मेरी अच्छी बिटिया ।" धीमे से कहकर बाबूजी लम्बे - लम्बे डग भरते हुए,पीछे मुड़कर देखे बिना, तेजी से शोभना को बैंक के बाहर अकेली खड़ा छोड़ कर चले गये थे !

उनकी सीधी पीठ को गली के पार ओझल होता देखती रही थी वह और फिर लम्बी साँस लेकर घर लौट आयी थी वह ! हाँ , घर वही ससुराल ही तो अब एक ब्याहता का घर होता है! ऐसे उदार पिता श्री धनपतराय उसे मिले जो बिटिया का संसार एक बारगी फिर संवार कर चले गये थे। सज्जन मनुष्य ऐसे ही तो होते हैं । नेक चलन के भले इन्सान बाबा ने शादी के समय भी समधियों की खूब आवभगत की थी हर तरह से उन्हें संतुष्ट करके ही बेटी को विदा किया था उन्होंने ! राजशाही ठाठ से सम्पन्न हुई शादी में बेटी "पराया धन" होती है। उसे कन्यादान देकर रमा देवी और धनपतराय जी ने अपना ये जन्म पुण्यशाली बनाने का गौरव अवश्य प्राप्त कर लिया था। अपने इस पराये धन को कुछ और धन से जोड़कर, उन्होंने अपनी सुशील कन्या को ससुराल भेज कर ,अपने मन को साँत्वना देते हुए कहा था, " यही जगत की रीति है"।

धर्मेश को बैंक के खाते के बारे में कुछ दिनों बाद ही पता चला और कारण बहुत जल्दी उभर कर सामने आ गया जब शोभना ने, अपने खर्च के लिये और अपने दोनों बेटों के खर्च के लिये, ससुराल के किसी भी सदस्य से पैसे माँगना बँद कर दिया तब अचानक धर्मेश को ये विचार आया कि मामला क्या है ? शोभना के मन में कोई छल नहीं था सो

वह बैंक की पासबुक अपनी साड़ियों के साथ , सामने ही कबार्ड में रखती जो धर्मेश ने देख ली थी और तब भी कुछ दिन वह अनजान बना रहा , सोचता रहा कि किस तरह , इस बैंक खाते के बारे में बात शुरु की जाये ! पर वह हिम्मत जुटा ही न पाया -

फिर कुछ महीने आराम से बीते। ऊपर से शांत लग रहे वातावरण में भी एक भीतर ही भीतर मानसिक संताप की दहकती लकीर, कहीं गहरे, फिर भी जल रही थी। उनके परिवार में एक तरह की उद्विग्नता प्रवेश कर चुकी थी।

उसी बीच शोभना ने बी. एड. का डिप्लोमा हासिल करने का कोर्स भी शुरु कर दिया। बच्चे अब सारे दिन को स्कूल जाने लगे थे और 3.30 के बाद जब तक वे घर लौटते, शोभना भी भागती पड़ती अपना कोर्स निपटा कर उनका होम -वर्क लेने, अगले दिन का पाठ तैयार करने और उन्हें नाश्ता खिलाने घर पहुँच ही जाती। खूब मेहनत कर रही थी वह भी ! ससुराल के फैले भरे पूरे परिवार के पर्व, उत्सव, अतिथि सत्कार , पूर्ववत् चलते रहे ।

कई बार, अतिथि समुदाय को नाश्ता देकर शोभना अपने कमरे में बेटों को बंद कर के पढ़ाती... चूंकि बड़ी कक्षा की पढ़ाई काफी कठिन हो चली थी, वह कई बार सोचती , 'टीचर का कोर्स उसे सही समय पर लाभ दे रहा था , सहायक सिद्ध हो रहा था जिस से वह अपने बच्चों को सही मार्गदर्शन दे पायी थी !'

अब दीव्यांश और अंशुल को लाभ हो रहा था और वे क्लास में टाप करने लगे थे। इस बात का श्रेय भी बहू को न मिलता , परिवार यही कहता कि ये तो हरेक माँ का फर्ज़ है !

शोभना चाह कर भी कभी ये न कह पाती कि धर्मेश निठ्ठलू है - काम करने से कतराते हैं ! उनका परिवार भी कुछ नहीं कहता - काम पर जाते- जाते दोपहर हो जाती, सुबह उठकर, स्नान के बाद पूरे चार घंटों तक धर्मेश पूजा- पाठ करते मानों अपना नाम ही चरितार्थ करते ! शोभना को ये अजीब लगता पर वह खामोश ही रहती । उसी अर्से में ससुर जी का हृदय गति रुक जाने से अचानक देहान्त हो गया ! सारा परिवार शोक सँतप्त था कि देवरजी सोहन ने घर के व्यवसाय पर अपनी पक्ड मजबूत करते हुए सारा अपने कब्जे में कर लिया तो दूसरी ओर धर्मेश सँसार में रहते हुए भी मानों विरक्त, सन्यासी से बन गये !

शोभना के साथ उसके सम्बन्ध सिर्फ पूजा की सामग्री ग्रहण करने में या बरामदे में पुरखों के समय के लगे बड़े से काठ के झूले पे बैठे -बैठे रात्रि के आगमन की प्रतीक्षा में उमस भरे, बोझिल दिनों की पूर्णाहुति करते हुए, इतने सघन हो उठते कि शोभना को अपना जीवन, व्यर्थ लगने लगता - उसका जीवन मानों बियाबान रेगिस्तान में तब्दील हो चुका था जिसके अन्त का न ओर दीखता था न छोर !

जैसे -तैसे 2 वर्ष ऐसी ही मन:स्थिति में शोभना ने गुज़ार दिये। बच्चों को यंत्रवत पढ़ाती , घर के कार्य को निपटाती , गृहस्थी का भार उठाती वह युवावस्था में वृद्धा सा महसूस करने लगी थी, थकी -थकी रहती ।

बाबा और माँ भी उसी अर्से में भाइयों के पास अमरीका चले गये थे। तब तो वह और भी अकेली पड़ गयी थी। एक दिन धर्मेश ने ही सुझाव रखा, कि , " तुम्हारे बाबा जो पैसा जमा करवा गये हैं उन्हींसे कुछ बाँधणी साड़ियाँ, राजस्थानी अलंकार वगैरह लेकर क्यों न हम अमरीका जायें और वहाँ प्रदर्शनी करें, अवश्य मुनाफा होगा !"

तब शोभना विस्मय से देखती ही रह गई पर आखिर मान गई क्योंकि पहली बार उसके पति ने कोई नया काम करने के प्रति उत्साह दिखलाया था और उसे सहमत होना सही लगा था।

खैर ! वे दोनों ने ठीक जैसा सोचा था उसी तरह किया -- बच्चों को सास जी के पास छोड़कर वे अमरीका गये, माँ, बाबूजी और भाइयों ने स्वागत किया और सारा इंतजाम भी करवाया और सच में मुनाफा भी हुआ !

प्रदर्शनी सफल रही और सारा साथ लाया हुआ सामान बिक गया था। रात देर से , भैया के घर के कमरे में धर्मेश ने सारा पैसा गिनकर सहेजा और कहा, " कल मैं यहाँ बैंन्क में जाकर खाता खुलवा देता हूँ !"
पता नहीं क्या हुआ कि शोभना के धैर्य का बाँध जो वर्षों से उसने किसी तरह, सम्हालकर रखा था वह भावावेग की नदी सा बह निकला और सारी सीमाएँ तोड़कर बह चला ! वह एकदम से बिफर पड़ी, " ना ! ये मेरे बाबा का दिया पैसा था धर्मेश , उन्हें उनका पैसा लौटा दो और बाकी का मुनाफे का हिस्सा मुझे दो धर्मेश !" पहली बार, हक जताते हुए, कुछ ऊँची आवाज़ में शोभना ने ये कहा तो धर्मेश भौचक्का रह गया ! " क्या कहा तुमने ?" इतना ही बोल पाया तो साहस बटोर कर शोभना ने कहा, " पैसा बबलू (दीव्यांश) और मुन्ना (अंशुल) पर ही तो आज तक मैंने खर्च किया है !"

तब धर्मेश ने शोभना को उसी के भाई के घर में बैठे -बैठे खूब खरी- खोटी सुनाई, खूब डांटा ! शोभना उसके कापुरुष रुप को , उसके मुखौटे को उतरा हुआ , हताशा से भर कर, देखती रही ! यही था उनके आपसी पति पत्नी के रिश्ते का अंत ! वे खूब झगड़े थे ...उस रात, सारे बँधन टूट गये थे और बात "डाइवोर्स" शब्द पर आ रुकी - " तलाक" शब्द

धर्मेश ने ही पहले कहा और रोती हुई शोभना को छोड़कर टैक्सी मँगवाकर, माँ बाबुजी या भाई साहब को मिले बगैर, रात के अँधेरे में, एअरपोर्ट के लिए धर्मेश निकल पड़ा तब शोभना को उस के भग्न हृदय और टूटे रिश्ते का अहसास हुआ - और एहसास हुआ अपनी आँखों के तारे जैसे दोनों बेटों के भारत में रह जाने का !

बाद में धर्मेश के वहाँ पहुँचने के बाद तो सास जी और देवर जी ने बच्चों को बहकाया कि, तुम्हारी ममी को डालर पसँद हैं - तुम नहीं ! पर हमें तो तुम पसंद हो !

10 साल तक शोभना अपने पैरों पर खड़ा होने का सँघर्ष करती रही ! बच्चों से बात करने के लिये गिड़गिड़ाती रही परन्तु , सब व्यर्थ ! बैंक में नौकरी करती रही ,तब क्रिसमस के दिन जब सारा अमरीका छुट्टी मनाता है, उस वक्त भी शोभना ओवर टाइम करती रही।

आखिर जब पैसे जुड़े तब भारत गयी - श्वसुर गृह के द्वार पर खड़ी शोभना को उसके ससुराल के किसी भी सदस्य ने अब कुमार हो चुके , उसी के बेटों से मिलने नहीं दिया !
- अब सोहन देवर की शादी हो चुकी थी, देवरानी भी आ गयी थी और घर के रसोइये ने बतलाया कि नई बहुजी बच्चों का बहुत खयाल रखती हैं। हज़ार मिन्नतें की शोभना ने पर किसी ने एक ना सुनी - तब हार कर वह अमरीका वापसी के लिये हारे मन से प्लेन में आकर बैठ गयी ! भारत से प्लेन उड़ा तब तक वह सँज्ञाहीन हो गई थी परन्तु री फ्यूलिँग के बाद पेरिस रुककर दोबारा जब प्लेन उड़ा तो जो रुलाई शुरु हुई कि बस, रुकी ही नही। हाँ ,ऐसी यात्राएँ भी जीवन में होती हैं ।

आज का समय :
अब शोभना अपना खुद का सफल व्यवसाय चलाती है। ड्रायी क्लीनिग का बिजनेस है उसका जो उसने बैंक से लोन लेकर शुरु किया और काफी कर्जा वह चुका चुकी है, सम्पन्न हो गई है, अपने बाबूजी व माँ को एक नये , बड़े घर में अपने साथ रहने के लिये भाइयों से आग्रह कर के वह लिवा लायी है। मर्सीडीज़ कार भी खरीद ली है अब उसने। स्वाभिमान की , स्वतंत्र परन्तु मेहनतकश जिंदगी जी रही है। अकेलापन आज भी उसके साथ है क्यूंकि उसने किसी दूसरे मर्द को अपने पास आने ही नहीं दिया कभी। काम ही उसके जीवन का पर्याय बन गया है। उसके ससुराल में उसे " धोबन" कहकर सम्बोधित किया जाता है जब भी दीव्यांश और अंशुल की मम्मी जो अमरीका में रहती है उसके बारे में कोई बात निकल आती है तब।
- दोनों बेटों की पढ़ाई का कालेज का खर्चा शोभना ने ही यहाँ से मनीआडर ड्राफ्ट भेजकर दिया जिसे वहाँ किसी ने साइन करके ले लिया था। अब बच्चे उस के साथ कभी कभार बात करने लगे हैं , शोभना नियमित हर 2, 3 दिनों में उन्हें फोन करती रहती है।
शोभना को दृढ़ आशा है कि बेटों का भविष्य सँवारने में एक दिन वह अवश्य मदद करने में सफल होगी - जैसा आज तक उसने किया है । धर्मेश आज भी नित 4,5 घँटे पूजा पाठ में गंवाते हैं , उनके परिवार का काम , सोहनलाल देवर जी ही देखते हैं । सासजी अपनी दादी माँ की भूमिका ओढ़े दिन गुजारते, नई पीढ़ी को कोसती रहती हैं कि हमारे जमाने में ऐसा तो न था ! और विश्व के सबसे समृद्ध देश अमरीका में , मेहनत करती शोभना, शादी - ब्याह को आज भी " *जनम –जनम के फेरे*" मानती है !

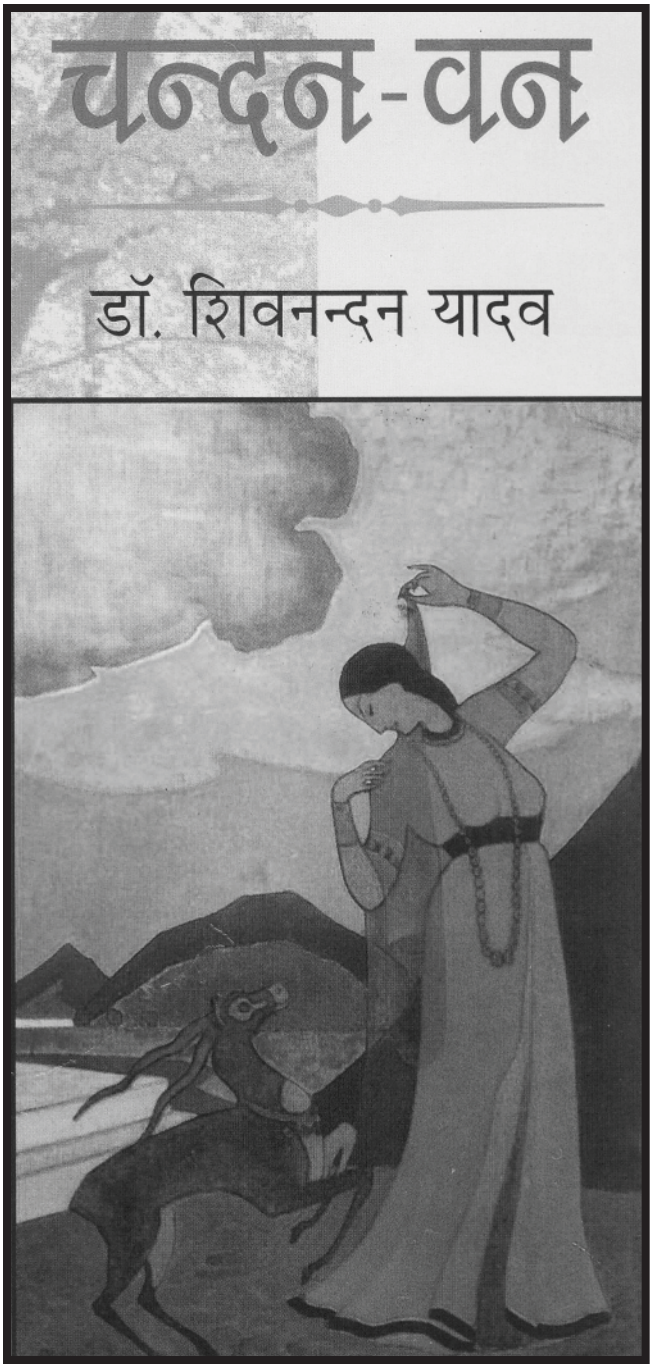

रेखा चित्रात्मक कहानी
'गोमती बुआ'
अखिलेश शुक्ला (भारत)

गोमती बुआ हमारे साथ कई वर्ष से रह रही थी। मैंने अपने बचपन से युवावस्था तक उन्हें एक ही रूप में देखा था। रूई के समान सफेद बाल, पोपला सा मुँह, झुकी हुई कमर उनकी पहचान थी। बुआ की आँखे हमेशा पूरी तरह बंद रहती। जब उन्हें कहीं देखना होता तो वे अंगूठे तथा ऊंगलियों की सहायता से पलकें उठाकर कुछ देख पाती थीं। उन्हें सुनाई भी बहुत कम देता था। जब किसी बात को सारा गांव सुन समझ ले उसके बाद ही वे बातें बुआ को समझ में आ पाती थीं।

वे मेरे पिताजी की सगी बहन नहीं थीं। उनका विवाह आठ वर्ष की आयु में हो गया था। विवाह के पश्चात वे केवल एक बार ही ससुराल गई थीं। उसके पश्चात जो वापस आई तो फिर कभी भी दोबारा वहाँ नहीं गई। उन्होंने अपनी पूरी उम्र गाँव के मकान के पिछवाड़े बनी एक छोटी सी कोठरी में ही गुजार दी।

वे गाँव भर की बुआ थीं। आठ वर्ष के बच्चे से लेकर अस्सी वर्ष के वृद्ध भी उन्हें बुआ कहकर पुकारते। बहुत हुआ तो बुर्जुग उन्हें सम्मान से गोमती बुआ कह लेते। मुझे अच्छी तरह याद है, मेरे पड़ोस में रहने वाले लच्छू काका ने एक बार उन्हें गोमती बाई कह दिया था। उस दिन बुआ ने लच्छू काका को जी भर कर कोसा था। वे तीनों पहर लच्छू काका की पिछली सात पीढ़ियों से लेकर आगे आने वाली सात पीढ़ियों का सत्यानाश करके शांत हुई थीं। वह भी तब, जब वे पूरी तरह थक हार कर पस्त पड़ गई थीं।

हमारे परिवार में किसी ने भी गोमती बुआ को गहरी नींद में सोते नहीं देखा था। किसी चपल श्वान के समान थी उनकी नींद। ज्यों ही कोई खटका होता बुआ खट से चारपाई पर उठ बैठती और लाठी को चार छः बार जमीन पर पटक-पटक कर हम सब लोगों को पुकारती। वे चाचा को आवाज देती, " देखना परेम कौन है? वहाँ पर? ठठरी बँधा ।" दो चार बार बुआ के पुकारने पर चाचा की नींद में खलल पड़ता वे बिस्तर पर पड़े- पड़े ही कहते, " सो जा बुआ कोई नहीं है, क्यों आधी रात को पूरे गाँव की नींद बर्बाद कर रही है। " यह सुनकर बुआ मन ही मन बड़बड़ाती रहती। न जाने कौन सा मंत्र पढ़ती रहती। यह सिलसिला जाने कब से चला आ रहा था, मुझे याद नहीं है। बुआ के सोने का कोई समय नहीं था। जब वे भोजन कर लेती,राम नाम की माला जपते हुये कोठरी में चली जातीं। कभी - कभी तो माला उनकी खाट के नीचे होती और वे राम नाम का जाप कर रही होती। उसी अवस्था में वे नींद की आगोश में समा जाती थीं। चाहे उस समय शाम के छः ही क्यों न बजे हों। लेकिन उनके उठने का समय तय था। वे प्रायः चार बजे के आसपास उठ बैठती थीं। मैंने तो कई बार अपने भाई बहनों से इस बात को लेकर शर्त लगाई थी कि देखना आज बुआ ग्यारह बजे सोई है, सुबह सात से पहले नहीं उठने वाली। लेकिन मैं अपनी शर्त हमेशा हार जाया करता था, क्योंकि वे मेरी आशा के विपरीत प्रातः चार बजे ही उठ बैठती थीं। वे बिस्तर पर पड़े पड़े कुछ देर तक राम नाम जपतीं। उसके पश्चात लालटेन जलाकर मंदिम सी रोशनी में शौचकर्म से निवृत्त हो जातीं। पिताजी हमेशा चिंता किया करते थे कि कही ऐसा न हो ये बुआ रात अंधेरे में कही गिर गिरा पड़ीं और लेनें के देनें पड़ जाएँ। लेकिन बुआ ने यह कष्ट कभी किसी को नहीं दिया। मैं उस वक्त सबसे कहा करता था कि बुआ की भले ही आँखे नहीं है पर उनके हाथों में रखी लाठी में शायद जादुई आँखे हैं, जिसके सहारे वे कभी भी, कही भी, आ जा सकती हैं।

कड़ाके की सर्दी हो, उमस भरी गर्मी अथवा मूसलाधार बरसात वे हमेशा प्रातः ही स्नान कर लेतीं। उसके पश्चात कमरे में रखी हुई रामलला की मूर्ती के सामने घी का दीपक जलाकर दो अगरबत्ती लगातीं। फिर माला लेकर जो जाप करने बैठती तो पिताजी के पुकारने पर जाप समाप्त कर चाय पीने आतीं। वे अपना पीतल का गिलास कटोरी साथ ही रखती थी। वे चाय पीने के पश्चात बर्तनों को धो मांजकर जतन से अपनी संदूक में रख देतीं।

बुआ को कुत्ते-बिल्लीयों से हमेशा नफरत रही। वे उन्हें देखते ही चिढ़ जाती थी। एक दिन रामदास के बड़े बेटे भगवान दास ने एक पिल्ला बुआ की कोठरी के अंदर छोड़ दिया था। बुआ ने उस पिल्ले को बाहर निकालने के प्रयास में कोठरी के अंदर रखी चीनी मिट्टी की बरनी तथा मिट्टी के अन्य पात्रों को मिटा दिया था। पिल्ला तो कोठी के एक कोने में दुबक कर कांय-कांय करता रहा लेकिन सामान की बर्बादी होती रही। बाद में बुआ ने कुँए से पानी लाकर कोठरी को अंदर बाहर से अच्छी तरह धोकर उसकी लिपाई पुताई की थी। वे उस दिन रामदास के घर तक भी गई थीं यदि वह घर मिला जाता तो शायद बुआ के प्रवचनों तथा लाठी की मार से उसका बच पाना कठिन था।

पिताजी हमेशा बुआ को समझाया करते पर वे घर में अपनी ही चलाती रहती। पिताजी उनसे खाने के बारे में पसंद पूछते कहते, "बुआ , कौन सी सब्जी खाओगी ला देता हूं" प्रत्युत्तर में वे दीवान की बागुड़ से लौकी गिलकी के नीहे(छोटे फल) तोड़कर अम्मा के सामने पटक देतीं। उन वे स्वाद नीहें की सब्जी बघारने को कहतीं। अम्मा हमेशा उनका आदर करती थीं, इसलिए उनकी मन पसंद सब्जी बाजार से मंगवाकर बना देती और कहती, "ओ! बुआ ,आज तुम्हारी तोड़ी हुई सब्जी ही बनाई है, इन्हें तथा बच्चों को यह बहुत पसंद है।" यह सुनकर बुआ की प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रहता। वे कभी पिछवाड़े लगे नीबू के वृक्षों से गिरे अधपके नीबू बीनकर चाची के सामने धर देती। बुआ की ज़िद होती कि इन नीबू का ही अचार डाला जाए। चाची बुआ से बहस

करती, उन नीबू से अचार न बनने की बात कहती, लेकिन बुआ कहाँ मानने वाली थीं। वे माँ से उन नीबूओं का आचार बनाने को कहतीं। माँ बहुत ही होशियारी से बुआ की निगाह बचाकर पिताजी से अच्छे नीबू बाजार से मंगवा लेती और उनका आचार बनाकर बुआ को पेश करती। इस तरह उनके साथ सामंजस्य बिठा पाना कोई हँसी खेल नहीं था। कभी- कभी तो घर का हर सदस्य उन पर खीज उठता था। लेकिन वह खीज अधिक देर तक नहीं रह पाती थी। बुआ भी जितनी जल्दी गुस्सा होती उससे भी जल्दी वे सामान्य हो जाती थीं। उनकी स्वभावगत विशेषताओं को समझ पाना कभी-कभी कठिन हो जाता था। लेकिन वे हमेशा पिताजी का सम्मान करती थीं।

जब भी कभी गाँव में कुछ कार्यक्रम होते वे तुरंत उसका प्रमुख हिस्सा बन जाती। गाँव में प्रतिवर्ष होने वाली रामलीला, रासलीला तथा गणेश उत्सव आदि पर गोमती बुआ सब की डांट खाने को बावजूद अपनी क्षमता से अधिक कार्य कर सहयोग देती। पिताजी ने कई बार बुआ को टोका था, "क्या जरूरत है तुम्हें बुआ गांव के लोगों के काम में टांग अड़ाने की? कुछ तो शर्म करो। गाँव के लोग क्या सोचेंगे ?" बुआ हँस कर टाल जाती, वे कहती, "अच्छा यह बूढ़ा शरीर गाँव के कुछ काम आ जाए तो अपने आप को धन्य समझूँगीं। ये तो मेरा सौभाग्य है कि तुम सब मुझे सम्मान देते हो, उसके बदले में क्या कुछ सेवा भी नहीं करने दोगे ?"

"बुआ , फिर भी तुम अपनी उम्र का कुछ ख्याल तो करो"

"बेटा उम्र का ख्याल किया तो मैं गई इस दीन दुनिया से " बुआ दार्शनिक अंदाज में गहरी सांसे लेते हुए कहतीं।

"तुम्हें तो समझाना ही बेकार है," पिताजी हमेशा की तरह झल्ला उठते। बुआ अपने पोपले मुँह, गडढों भरे गाल और धंसी हुई आंखों द्वारा प्राप्त अनुभवों को समेटते हुए कहतीं, "बेटा तूने मुझ बाल विधवा को रखकर मुझ पर जो उपकार किया है उसका कुछ तो बदला चुका लेने दे मुझे?" बुआ की अंतरआत्मा की पुकार सुनकर पिताजी हर बार उनके सामने नत मस्तक हो जाया करते। वे अपनी डबडबाई आंखो से बुआ का सामना कर पाने की स्थिति में नहीं रह पाते थे। उस वक्त उनमें बुआ का सामना करने का साहस नहीं रहता था। वे बुआ से दूर हटकर किसी और कार्य में लग जाते थे।

गोमती बुआ गांव के लिए सेवा की प्रतिमूर्ति थी। बुआ ने कभी किसी से सहारा नहीं लिया, उल्टे उन्होंने वक्त ज़रूरत लोगों पर उपकार ही किया था।

प्राथमिक कक्षाओं को उतीर्ण करने के पश्चात मेरे भाई बहन शहर में मेरे पास पढ़ने के लिए आ गए थे। घर में बड़ा होने के कारण मेरा भी फर्ज बनता था कि मैं उन्हें अपने पास रखकर उनकी अच्छी शिक्षा की व्यवस्था करूँ। हम सबके शहर आ जाने के पश्चात गांव में माँ-पिताजी तथा बुआ ही रह गए थे। पिताजी हर रविवार शहर आकर हमारे हालचाल ले जाते तथा गाँव की जानकारी दे जाते।

कभी-कभी वे सप्ताह भर का सामान रख जाते। उस सामान में बुआ द्वारा प्यार से भेजी गई कुछ खाने पीने की चीजें भी होती। वे मौसम के अनुसार इमली, अमरूद, आम आदि जरूर भेजतीं।

पिताजी का गाँव से आना और बुआ द्वारा भेजी गई सामग्री लाने का यह क्रम वर्षो तक चलता रहा। एक दिन कॅपकपा देने वाली सर्दी में जब हम स्कूल जाने की तैयारी कर रहे थे, गाँव से खबर आई कि गोमती बुआ नहीं रही। उस दिन रोते बिलखते हम भाई बहन तुरंत गाँव चले गए थे। बुआ की मृत्यु की खबर से पूरा गाँव शोकमग्न हो गया था। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति उनकी अंतिम यात्रा में शामिल हुआ था। सभी ने उन्हें सम्मानपूर्वक अंतिम विदाई दी थी। उस दिन गाँव के किसी भी घर में चूल्हा नहीं जला था।

बाद में माँ और पिताजी भी शहर आ गए थे। तब से लेकर आज तक गोमती बुआ मेरी यादों में बसी हुई है।

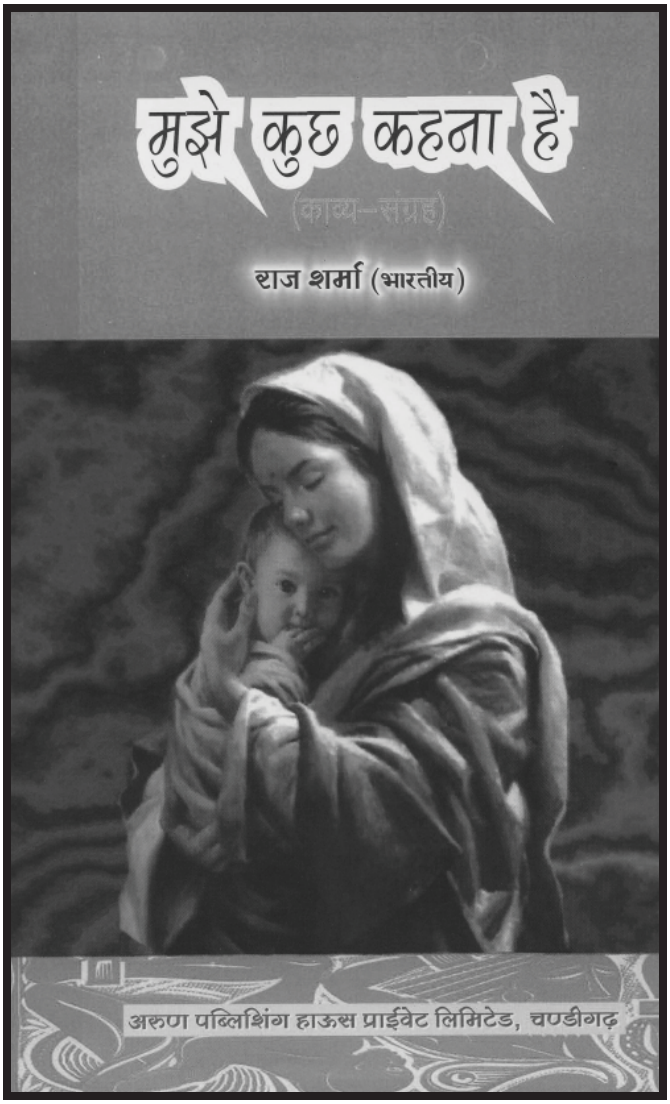

लेख

प्रज्ञा परिशोधन संदर्भ : सांस्कारिक उत्तरदायित्व

लेखिका : इन्द्रा (धीर) वडेहरा (कनाडा)

प्रश्न : दादा-दादी घर में हैं और जब भी कोई घर में आता है तो दादी बच्चों को उनके पाँव छूने के लिए कहती हैं ! पाँव ना छूना दादी माँ को अशिष्टता लगती है, और बच्चे हमारी संस्कृति से अनजान हैं इस लिए वह झेंप से जाते हैं ! सत्य तो यह है कि कुछ एक औरतों के चरण छू कर प्रणाम करना तो मुझे भी भारी लगता है । मेरी दुविधा आप समझ सकती हैं । कुछ समाधान है आपके पास ?
--प्रश्नकर्ता गुप्त रहना चाहती हैं (संबोधन के लिए जेन)

उत्तर : जेन जी, परिवार निर्माण एक विशिष्ट स्तर की साधना है । ऋषि मुनियों का कहना है कि इस में योगी जैसी प्रज्ञा और तपस्वी जैसी प्रखर प्रतिभा का परिचय देना पड़ता है । ऋषि श्रेष्ठ नें इसे तपोवन कह कर भी पुकारा है । परिवार में रह कर ही मनुष्य की शिक्षा होती है ! महात्मा-पुरुष, समाज-सुधारक, भक्त, ज्ञानीजन, संत, विद्वान, इन सब का पालन-पोषन, शिक्षा, ज्ञान, और संस्कार-वर्धन इसी तपोभूमि पर होता है । इस तपोभूमि पर चलते-फिरते, उठते-बैठते, हमारी आत्मीयता विकसित होती है और आत्मभाव की सीमा बढ़ती है । आत्म-उन्नति के लिए यह सर्वोपरि योग-साधना है। विचारशील-महिलाएँ, पवित्र-शिला रुप में, इस तपोभूमि की नींव बनती रही हैं और ऐसा लगता है दादी का अभिप्राय यहाँ बच्चों को सुशिक्षित बनाना और शुभ-संस्कार देना है । परिवार को सुसंस्कृत बनाने में और बच्चों के आध्यात्मिक विकास में दादी अपना योग-दान डाल रही हैं ।

जेन जी, चरण- स्पर्श एक भाव-द्योतक मुद्रा है ! चरण-स्पर्श करते हुए बिन-बोले हम यह भाव व्यक्त कर देते हैं कि आपका आना हमें प्रिय लगा और हम आप का स्वागत करते हैं। बारीकी से देखा जाए तो चरण-स्पर्श में ही अतिथि का स्वागत एवं अभिनंदन छुपा है और वाणी के मौन होने पर भी हमारा सत्कार भाव दूसरे तक पहुँच जाता है ।

इस प्रकार, एक-दूसरे का भाव-भरा अभिवादन करते हुए, बच्चे बड़ी आसानी से मधुर शब्दों के आदान-प्रदान का अभ्यास कर लेते हैं, और सूक्ष्म रुप से वच्चों में दूसरों के सम्मान करने का भाव भी पनपने लगता है।

रही बात बच्चों के चरण-स्पर्श की, "घर में आए अतिथि के चरण छूने से बालक आना कानी करते हैं या छूना नहीं चाहते या शर्माते हैं।"
यदि बालक का चेहरा, उसकी भाव-भंगिमा घर आने वाले का सत्कार व्यक्त करेगी तो दादी माँ भी शायद बच्चों को चरण-स्पर्श के लिए विवश नहीं करेंगी। ध्यान रहे, उनकी भाव-भंगिमा में घर आने वाले के प्रति सत्कार अवश्य व्यक्त हो ! ऐसा करके देख लीजिए ।

आपकी यह दुविधा कि, "कुछ एक औरतों के चरण छू कर प्रणाम करना जो आपको भी भारी लगता है ।"

इस विषय में मैं यह कहना चाहुँगी कि मैं यह मानती हूँ कि कई बार दूसरे का व्यक्तित्व ही ऐसा होता है कि उनके चरण-स्पर्श करना हमें भारी लगता है ; जेन जी, फिर भी, आप इस पर ध्यान दें, शास्त्रकारों का कहना है : "शील ही हमारा परम भूषण है !" और सैद्धांतिक मतभेद होते हुए भी व्यावहारिक जीवन में बड़ों को सम्मान देने का उच्च आदर्श ही भारतीय संस्कृति सिखाती है।

भगवान राम और रावण में पारस्परिक प्रतिद्वंदिता होते हुए, विपरीत परिस्थिति में, रावण की कुटिलता जानते हुए भी भगवान राम नें दूसरे का सम्मान करने की इस मर्यादा का पालन किया था । जैसा रामायण में लिखा है : "अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। विप्र चरन पंकज सिरु नावा ।।" भगवान राम नें अपना रथ आगे बढ़ाया और रावण के सम्मुख पहुँच कर उसके चरणों में शीश झुकाया ।

व्यक्तिगत रुप में संत तुलसीदास के वचन : "सिया राम मय सब जग जानी । करहुँ प्रणाम जोरि जुग पान।।" मुझे बहुत प्रेरणा दे जाते हैं, आप भी जब किसी को प्रणाम करें तब गोस्वामी तुलसी दास जी के वचन ध्यान में लाते हुए उन्हें "सिया-राम स्वरूप देखें" और नमस्कार करें, मन को प्रसन्नता मिलेगी, मेरा यह विश्वास है ।

संक्षेप में शास्त्र कुछ ऐसा कहते हैं :
"शील ही हमारा परम भूषण है ।"
"वाणी और व्यवहार से जहाँ एक-दूसरे का सम्मान प्रकट करने का स्वभाव बन जाता है, वहाँ स्नेह और सहयोग निरंतर बढ़ता ही रहता है ।"

समीक्षा

समीक्षा
मेरी जीवन यात्रा
(जैसा जिया,भोगा और भटका)

डॉ. योगेश चौधरी, डी. लिट
भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
मगध विश्वविद्यालय

ख्यातिलब्ध वयोवृद्ध साहित्यकार राधाकृष्ण प्रसाद की आत्म- कथा- " मेरी जीवन यात्रा" एक अप्रतिम जीवन कथा है जिसमें बड़ी निष्ठत्तापूर्वक कथात्मक शैली में भुक्त एवं व्यतीत जीवन - का वर्णन प्रथम पुरुष तथा तृतीय पुरुष की शैली में किया गया है । लेखक के प्रारंभिक जीवन में इनके माता - पिता का स्नेह साया उठ गया और अनाथ हो गये । किसी प्रकार मैट्रिक उत्तीर्ण होकर प्रेस में नौकरी 15 रुपये महीने पर करके जीवन - बसर किया। इनके जीवन में कई गलत मोड़ आए। इनकी इच्छा के विपरीत इनके चाचा ने इन्हें वैवाहिक बंधन में बांध दिया। स्नातक वर्ग की पढ़ाई खर्च दहेज में देने का प्रलोभन देकर। बी.ए.आनर्स प्रथम होकर पास करने के उपरांत एम.ए. वर्ग में पटना विश्वविद्यालय में नामांकन कराया। साहित्य में गहरी रुचि रहने के कारण उन्होंने कहानियां लिखना प्रारंभ किया और इनकी कहानियां हिन्दी की श्रेष्ठ पत्र- पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर के परामर्श से उन्हें जन सम्पर्क विभाग के ऊँचे पद की नौकरी मिली। इस प्रकार आर्थिक संकट कम हुआ। जीवन के दूसरे मोड़ पर आकर आकाशवाणी के निदेशक पद पर नियुक्त हुये। यहाँ के परिवेश में साहित्य जगत के कई विख्यात साहित्यकारों से सान्निध्य प्राप्त हआ। आचार्य शिवपूजन सहाय , रामवृक्ष बेनीपुरी आदि ने इनके 1940 में प्रकाशित कहानियों की पुस्तक 'देवता' की भूरि - भूरि प्रशंसा की । फणीश्वरनाथ रेणु इनके मित्र और सहकर्मी थे। 1969 में ये दूरदर्शन दिल्ली केन्द्र में निदेशक पद पर आसीन हुये। रेडियो -दूरदर्शन केन्द्र में कलाकारों से निकट संपर्क हुआ और शारदा , छाया, सरस्वती आदि अन्तरंग मित्र बनकर चली गईं। लेखक का स्नेह निर्झर झर गया और अपंग धर्मपत्नी ही अवशेष जीवन की संगिनी रही। यह इनके जीवन का तीसरा मोड़ है। इस सच्चाई को लेखक ने दिल से स्वीकारा है।

ये साहित्य सेवा में अनवरत लगे रहे। फलत: दस कहानी - संग्रह ,ग्यारह उपन्यास , दो रेडियो रूपक - संग्रह और एक दर्जन बालोपयोगी पुस्तकें भारती मन्दिर में अर्पित किये।

आज अस्सी के दशक को पार करके भी इनके साहस, मनोबल और संकल्प - शक्ति में कोई कमी नहीं आई है। इनके सफल जीवन का राज इनकी निष्ठा , देशभक्ति तथा ईमानदारी है। आज अमेरिका और कैनैडा के प्रवास में रहकर भी इनकी आत्मा भारत में रहती है ।

यही कारण है कि बिहार सरकार ने इन्हें "बिहार गौरव" की उपाधि देकर सम्मानित किया। मेरी सम्मति में लेखक राधाकृष्ण प्रसाद का सम्पूर्ण जीवन एक खुली किताब की भाँति है। इनकी 'मेरी जीवन यात्रा' एक सफल जीवन यात्रा है। इसमें अनुकूल सच्चाई व्यक्त हुई है। लेखक के शब्दों में "यह आत्मकथा "अपने ही कृत्याकृत्य का अवलोकन है।"

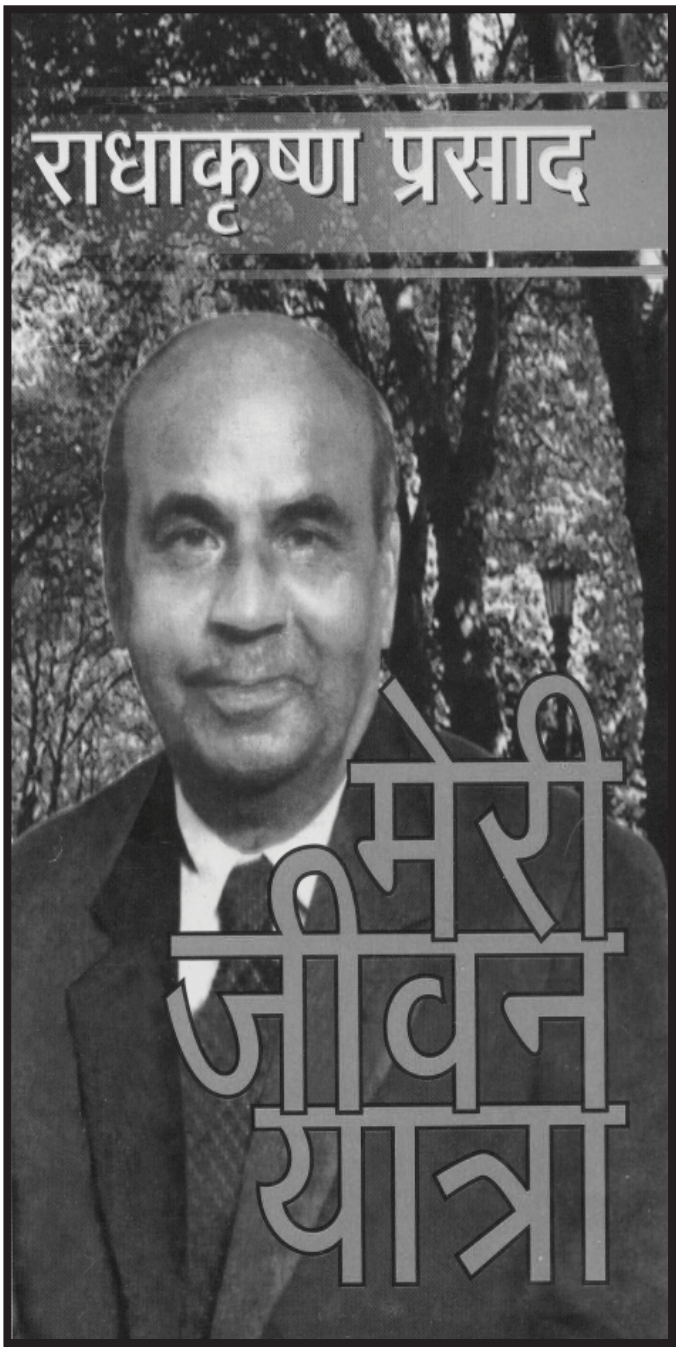

'ढाई आखर' और 'मोहब्बत के सिक्के'

रेखा मैत्र की अंतरंग अनुभव की काव्यकृतियां

समीक्षक : गुलशन मधुर

जब आप रेखा मैत्र की कोई कविता पढ़ चुकते हैं तो जो दो बातें एक सुखद आश्चर्य के रूप में आपको अभिभूत कर जाती हैं, वे हैं रचानाओं के कलेवर की संक्षिप्तता और अभिव्यक्ति की निश्छल सहजता। दूर की कौड़ी की तरह शब्दों को जुटा लाने का या रचना को तराशने की अति के रूप में अलंकरण का कोई सम्मोह नहीं है. न भाषा का आडंबर, न शब्दजाल में उलझने का व्यायाम। नतीजा यह है कि रेखा की रचनाएं, बिना किसी अन्वय या व्यायाम दया की मांग किए, लगभग चुपचाप, अहसास को एक शीतल झोंके की तरह छू जाती हैं। 'ढाई आखर' से एक ऐसी ही नन्ही-सी लेकिन मर्मग्राही पूरी कविता उद्धृत करने के लोभ से बचना मुश्किल हो रहा है:

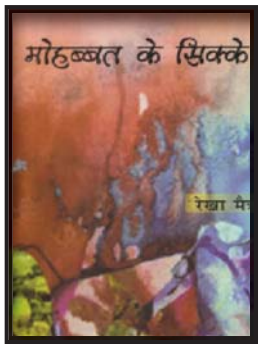

यादें भी अजीब चीज़ होती हैं
कितनी भी बांध-बूंध कर
मन के कोनों में दाब-दूब कर रख दो
बिल्ली की तरह दबे पांव
वापस अपने को खोलखाल कर
मन की खिड़की के
ठीक सामने आ खड़ी होती हैं।

कविता पढ़ने पर लगता है जैसे कवयित्री यादों के इस नट खटपन पर कुछ ऐसे मुस्कुरा रही है, जैसे किसी बच्चे की निर्दोष शरारत पर. जीवन के कड़वे-मीठे अनुभवों और विडंबनाओं को लेकर यही सहिष्णु मुस्कराहट रेखा की अधिकतर कविताओं में झलकती है। अनुभूति की तीव्रता के बावजूद एक उदासीन निर्लिप्तता - कथ्य से गहरी अंतरंगता के बावजूद एक स्वस्थ दूरी। मुझे रेखा मैत्र की कविताओं की सबसे प्रमुख विशेषता यही जान पड़ती है।

भ्रमवश इसे पराजयवाद की संज्ञा दे देना बहुत सहज होगा, लेकिन शायद यह - जो है उसकी अनुभवजन्य, जानी-बूझी स्वीकृति अधिक है। 'ढाई आखर' की 'सूरज की नियति' कविता की ये पंक्तियां कवयित्री की इस जीवनदृष्टि की तर्जुमानी करती जान पड़ती हैं:

चुनौती सा खड़ा
दोपहर की तपस झेलता
सोचता है रोज़ वह
आज नहीं जाएगा वह
नहीं चल पाती!
जाना ही होता है
उसे सागर के आमंत्रण पर

कविता स्वानुभूत पर आधारित होती है और स्वानुभूत उस तादात्म्य पर, जो आप अपने आस-पास से जोड़ पाते हैं। रेखा मैत्र का अपने आस-पास से जुड़ाव उनकी रचनाओं के कथ्य में कई व्यापक स्तरों पर उजागर होता है। निजी संबंधों को लेकर कभी मुस्कराती स्निग्धता, कभी किसी उदास स्मृति और कभी रिश्तों के अबूझपन पर कुतूहल के रूप में - जैसे 'मोहब्बत के सिक्के' संग्रह की 'उद्गार' और 'मां', और 'ढाई आखर' की 'मदर्स डे' और 'मरम्मत' कविताएं। या फिर कभी कवयित्री का भावजगत अधिक व्यापक क्षितिजों को छूता जान पड़ता है, जहाँ सारा परिवेश उसके संबंधों की परिधि में समा जाता हैं। इसका एक उदाहरण है 'मोहब्बत के सिक्के' संग्रह की कविता 'चांद', जिसमें रेखा कहती हैं:

मैंने अपनी कविताओं के लिए
आकाश को चुन लिया है
ताकि उसका विस्तार
कभी कम न पड़े !

हाँ, यह ज़रूर है कि कभी-कभी उनकी कविताएँ इतनी अधिक व्यक्तिगत हो गई हैं कि उन्हें पढ़ना किसी की खिड़की से घर के अंदर झांकने जैसा लगने लगता है। हालांकि यहां भी आप कथन की सहजता के कायल हुए बिना नहीं रह सकते:

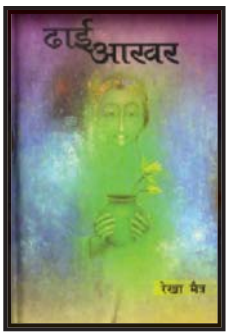

अजब भूल भरा जन्म दिन गुज़रा
मुझे जब अपनी भूल का
अहसास हुआ तो ख़्याल आया
इस भूल के दंड के तौर पर
आज यदि खुदा मुझे बुला लेता
तो मैं उसकी कृतज्ञ हो लेती!

ऐसी कविताएँ इतने अंतरंग निजी संबोधनों के रूप में हैं कि उनको पढ़ना शुरू करते समय एक उलझन सी महसूस होती है कि उनमें, पाठक के रूप में आपका, कवि की अनुभूति में साझा कैसे हो पाएगा। लेकिन परिणति तक पहुंचते-पहुंचते आप कविता की भावना में सराबोर महसूस करने लगते हैं। जैसे 'मासी मां के लिए...!' कविता की ये पंक्तियां:

तुम जहाँ भी होगी
छाया ही देती होगी
सिर्फ मैं तुम्हारी पहुंच की

परिधि से दूर हो गई हूं ।

रेखा की कविताओं में अतीत की सुधियों की तस्वीरें हैं, वर्तमान से बेशिकायत समझौते का बयान, पीछे छूटे देश के गली-गाँव की और अपना लिए गए प्रवास की अनगिनत खट्टी-मीठी छवियां । गृहविरह का अवसाद, नए रिश्तों की न केवल स्वीकृति बल्कि उनमें आत्मीयता की पहचान. दोनों संग्रहों की अधिकांश में छोटी-छोटी कविताएं शिद्दत से महसूस किए गए, लेकिन मंजी हुई परिपक्वता के साथ काग़ज़ पर उतारे गए ऐसे क्षण हैं, जो पाठक को अपने प्रवाह में बहाते तो हैं, लेकिन साथ ही वैचारिक ठहराव का एक संबल भी थमा देते हैं। आप सराबोर तो होते हैं, डूबते नहीं। ऐसे उद्वेलित क्षण, जो रेखा की कलम छूकर सहज होकर ठहर जाते हैं. इस मंथन की परिणति काव्य में कैसे होती है, इसकी कहानी कहती है 'मोहब्बत के सिक्के' संग्रह की रचना 'सृजन कविता का... !' काव्यसृजन की प्रसवपीड़ा को इतने दिलचस्प और सहज रूप में परिभाषित होते हुए शायद ही कभी सुना--पढ़ा गया हो:

जब आस-पास के माहौल की
कोई घटना-दुर्घटना
भीतर गर्भ-सी ठहर जाती
और आकार ग्रहण करती रहती
कागज़ तक लाने से पहले
एक अजीब-सी बेचैनी
दर्द से निजात तभी मिलती
जब घटना काग़ज़ पर उतर आती

रेखा एक सहज कवयित्री हैं। उनकी रचनाओं में सायासता का, कौशल की अति का कोई स्थान नहीं है। उन्हें पढ़ना अपनी भावनाओं से गहरे स्तर पर जुड़ना है। वे आपको उकसाती नहीं - कभी हल्का-सा मुस्कराने पर विवश कर देती हैं और कभी एक मौन उदासी से भर जाती हैं। रेखा मैत्र की कृतियां एकांत में पढ़ी जाने वाली अंतरंग अनुभव की कविताएं हैं।

मेरी हत्या क्यों की?

रचना श्रीवास्तव (अमेरिका)

जीवन की भूल भुलैया में
हर पल ,
रास्ता ढूँढता हुआ
अहसान सा गुज़रता है।
कुछ शब्द,
मेरे तकिये तले धरता है।
उन्हीं के सहारे,
यादों की सिकुड़ी चादर को
हौले से बिखराती हूँ।
कई सपने,
सामने खड़े हो
आँखों में आँखें डाल
पूछते हैं .....
मेरी हत्या क्यों की?

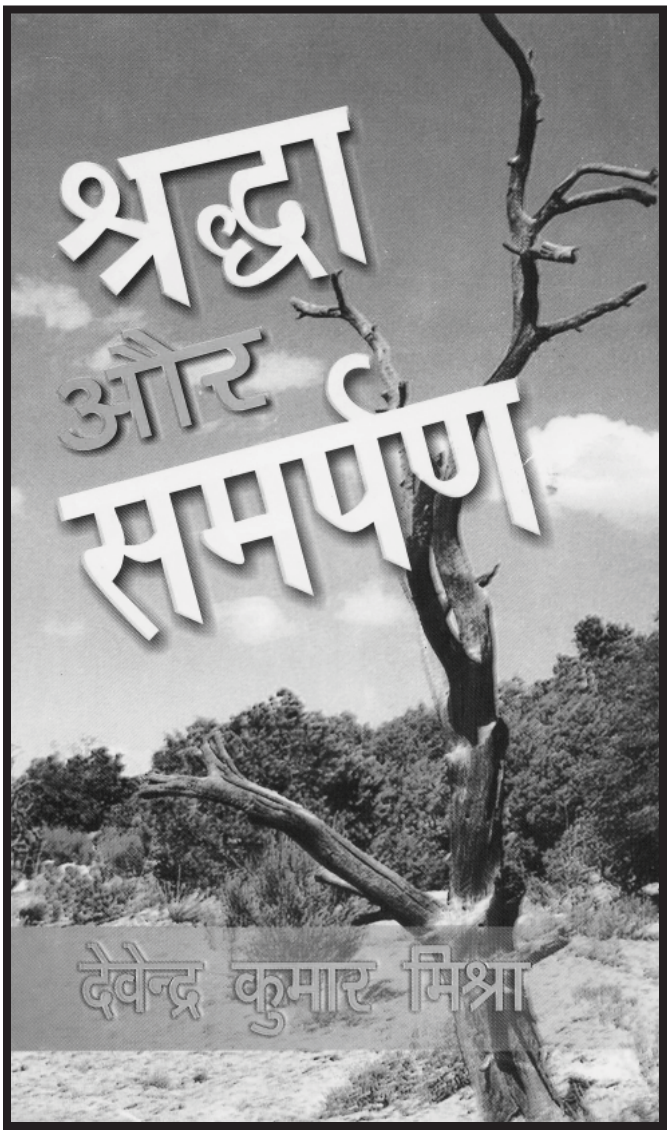

साहित्यिक समाचार

हिन्दी समाचार

देवी नागरानी के अंग्रेज़ी काव्य संग्रह (दि जर्नी) का विमोचन किरणदेवी सराफ ट्रस्ट के सहयोग से समारोह कीर्तन केंद्र सभागृह, विले पार्ले, मुंबई में 17 मार्च, 2009 को संपन्न हुआ। पुस्तक का विमोचन प्रसिद्ध उद्योगपति एवं समाजसेवी श्री महावीर सराफ जी के कर कमलों द्वारा संपन्न हुआ । कार्यक्रम की अध्यक्षता की - 'महाराष्ट्र हिंदी साहित्य अकादमी' के अध्यक्ष श्री नंद किशोर नौटियाल जी ने। विशिष्ट अतिथि के रूप में महानगर के अनेक गणमान्य एवं साहित्य के शीर्षस्थ कवि, पत्रकार पधारे ।
जिनमें प्रमुख अतिथी थे - श्री वासुदेव निर्मल , प्रख़्यात सिंधी शायर।
मुख्य अतिथि: कुतुबनुमा की संपादिका डॉ. राजम नटराजम पिल्लै ।
प्रमुख वक्ता: श्री आलोक भट्टाचार्य , फिल्म कथाकार श्री जगमोहन कपूर, अंजुमन संस्था के अध्यक्ष एवं प्रमुख शायर खन्ना मुजफ्फरपुरी, डॉ. संगीता सहजवाणी: अध्यक्ष हिंदी डिपार्टमेंट, आर.डी. कालेज ।
कार्यक्रम का संचालन किया मंचो के प्रसिद्ध संचालक श्री अनंत श्रीमाली ने।
कार्यक्रम का प्रारंभ माँ सरस्वती पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्जवलन से किया गया । माँ सरस्वती का आवाहन श्री हरिशचंद्र ने वंदना को अपने कण्ठ से अभिनव स्वर प्रदान कर किया।
पुस्तक के विमोचन के उपरांत श्री आलोक भट्टाचार्य ने (साउन्डस आफ साइलेन्स) नामक रचना का पाठ करते हुए अपने विचार प्रकट किये। डॉ. राजम ने अपने भाव प्रकट करते हुए देवी जी को बधाई दी। श्री जगमोहन कपूर ने अप-ने विचार लेखन पर प्रस्तुत किये, खन्ना मुजफ़्फरपुरी ने इस अवसर के अनुकूल कई दोहों का पाठ किया।
डॉ. संगीता सहजवाणी ने (दि जर्नी) की कुछ रचनाओं के संदर्भ में विशेष टिप्पणी करते हुए कहा " कि रचनाओं को पढ़ने के पश्चात जाने अनजाने में मन उस सत्य के साथ जुड़ जाने को करता है, पढ़ते -पढ़ते सुकून का आलम घेर लेता है" रामप्यारे रघुवंशी, ने अपनी संस्था की ओर से अपनी साथियों सहित देवी नागरानी जी का फूलों से सम्मान किया।
कवि गण समारोह में मौजूद थे रत्ना झा, रामप्यारे रघुवंशी, शोभा भवानी, गिरिश जोशी, रश्मी गितेश, शिप्रा वर्मा, रमेश श्रीवास्तव लल्लू, मधु अरोड़ा, उषा गुप्ता, अविनाश दीक्षित , मंजू गुप्ता, विश्वामित्र भेरवानी।
उसके पश्चात काव्य गोष्टी शुरू हुई जिसमें अनेकों कवि भागीदार रहे। जिनमें थे कुमार शैलेन्द्र जी, श्रीमती ज्योति गजभिये, खन्ना मुज़फ़्फ़रपुरी, डॉ. वफा सैलेश, शायर उबेद आज़म, संगीता सहजवाणी, कुलवंत सिंह, प्रमिला शर्मा, श्री कपिल कुमार, जनाब माहिर, नंदलाल थापर, और त्रिलोचन सक्सेना।

इस अवसर पर देवी नागरानी की रचनाओं पर टिप्पणी करते हुए अध्यक्ष श्री नौटियाल जी ने बहुभाषी रचनात्मक प्रस्तुतियों के लिये उन्हें विशेष बधाई दी। कार्यक्रम के अंत में देवी नागरानी ने माँ सरस्वती सहित सभी आगंतुको का हार्दिक दिल से धन्यवाद किया।

मध्य पूर्व क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन, मस्कत

(सन्दीप मल्होत्रा)

मस्कत में भारतीय राजदूतावास ने इन्डियन सोशल क्लब के हिन्दी विंग तथा विदेश मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से 19 व 20 मार्च 2009 को दो दिवसीय द्वितीय मध्य पूर्व क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन का सफल आयोजन किया। प्रथम मध्य-पूर्व क्षेत्रीय हिन्दी सम्मेलन 2006 में आबू धाबी में हुआ था

मस्कत के इस सम्मेलन में भारत, मस्कत और अन्य खाड़ी देशों के प्रतिनिधियों ने सक्रिय भाग लिया। भारत से आए प्रतिनिधियों में डॉ.अशोक चक्रधर, डॉ. बिमलेश कांति वर्मा, डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा, श्री दिनेश रघुवंशी, सुश्री मीनाक्षी पायल प्रमुख थे। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य मध्य पूर्व में हिन्दी की दशा और दिशा का अवलोकन करना था।

मुख्य अतिथि ओमान की पर्यटन मंत्री सुश्री रजिया बिंत अब्दुलअमीर बिन अली ने दीप प्रज्वलित कर सम्मेलन का शुभारम्भ किया। इंडियन स्कूल अल घुब्रा के छात्र - छात्राओं ने एक प्रार्थना गीत प्रस्तुत किया जिसके पश्चात् ओमान में भारत के राजदूत महामहिम श्री अनिल वाधवा ने आए हुए अतिथियों और प्रतिनिधियों का स्वागत किया। ओमान में हिंदी गतिविधियों पर एक संक्षिप्त दृश्य - श्रव्य प्रस्तुति के साथ सम्मेलन आरम्भ हुआ।

दो दिवसीय इस सम्मेलन में चर्चा का मुख्य विषय था - भारत से बाहर पल रहे भारतीय बच्चों में हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहन देना। प्राथमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण को सरल, सहज और आकर्षक बनाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए हिंदी शिक्षण में कम्प्यूटर और मल्टीमिडिया के प्रयोग पर बल दिया गया। हिंदी के विकास की भावी दिशाओं पर भी विस्तार से चर्चा हुई।

आए हुए प्रतिनिधियों और मस्कत में रहने वाले हिंदी प्रेमियों के लिये शाम को एक रंगा-रंग सांस्कृतिक कार्यक्रम और रात्रि भोज का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में मंच संचालन का कार्य भार लेखक ने निभाया। मस्कत के स्कूली बच्चों - आमीर, साधना तथा हर्श ने कविता पाठ से दर्शकों का मन मोह लिया। जाने मानें कवियों डॉ. अशोक चक्रधर और श्री दिनेश रघुवंशी ने कविता पाठ कर कार्यक्रम को एक नई ऊंचाई पर पहुंचा दिया।

कविताओं के इस दौर के बाद मस्कत के स्कूली बच्चों ने सुश्री सीमा चौधरी और सुश्री शैलजा सुकुमार द्वारा तैयार किये हुए फिल्मी और लोक नृत्य प्रस्तुत किये।

हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहन देने की दिशा में बहुत से महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए।

सम्मेलन के अंत में आए हुए प्रतिनिधियों को प्रमाण पत्र और स्मृति चिन्ह भेंट कर सम्मानित किया गया। महामहिम श्री अनिल वाधवा ने कार्यक्रम के सफल आयोजन पर हर्ष प्रकट किया और सभी आयोजकों को धन्यवाद दिया।

जिनमें मुख्य थे - श्री वीर सिंह, श्री श्याम बिहारी द्विवेदी, श्री हरीशचंद्र, श्री राजेश डागा, श्री सी एम सरदार, श्रीमति संगीता दुबे, श्रीमति मृदुला चौधरी, श्रीमति गीता मुंशी और श्री गजेश धारीवाल।

मक्सत में दो दिवसीय हिन्दी सम्मेलन की कुछ झाँकियां

तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ मण्टो की तरह हमें झकझोर देती हैं : कृष्णा सोबती

"तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों से गुज़रते हुए हम यह शिद्दत से महसूस करते हैं कि लेखक अपने वजूद का टेक्स्ट होता है। तेजेन्द्र के पात्र ज़िन्दगी की मुश्किलों से गुज़रते हैं और अपने लिये नया रास्ता तलाशते हैं। वह नया रास्ता जहाँ उम्मीद है। तेजेन्द्र की कहानियों के ज़रिये हिन्दी के मुख्यधारा साहित्य को प्रवासी साहित्य से साँझेपन का रिश्ता विकसित करना चाहिये। हम उनकी जटिलताएँ, उनके नज़िरये और उनके माहौल के हिसाब से समझें।" ये बातें मूर्धन्य उपन्यासकार एवं कथाकार कृष्णा सोबती ने आज के चर्चित कथाकार तेजेन्द्र शर्मा के लेखन और जीवन पर केन्द्रित पुस्तक 'वक़्त के आइने में' के राजेन्द्र भवन सभागार में आयोजित लोकार्पण समारोह में कहीं। कृष्णा सोबती ने तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों के शिल्प विधान पर चर्चा करते हुए कहा कि उनकी कहानी ' टेलिफोन लाइन' का अन्त हमें मण्टो की कहानियों की तरह झकझोर देता है। जहाँ एक ओर निर्मल वर्मा की कहानियाँ अंतर्यात्रा की कहानियाँ होती हैं जिनमें मोनोलॉग का इस्तेमाल होता है, वहीं तेजेन्द्र शर्मा बाहरी दुनिया की कहानियाँ लिखते हैं जिनमें चरित्र होते हैं और डॉयलॉग का ख़ूबसूरत प्रयोग किया जाता है।

इस अवसर पर प्रख्यात आलोचक प्रो. नामवर सिंह ने कहा कि " मुर्दाफरोश लोग हर जमात में होते हैं। और पूंजीवाद में तो ऐसे शख़्सों की इंतेहा है। वे मज़हब बेच सकते हैं, रस्मो-रिवाज़ बेच सकते हैं। तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी लाजवाब कहानी 'कब्र का मुनाफा' में वैश्विक परिदृश्य में पूंजीवाद की इस प्रवृत्ति को यादगार कलात्मक अभिव्यक्ति दी है।" उन्होंने इस आयोजन के आत्मीय रुझान की चर्चा करते हुए कहा - यह बेहद आत्मीयतापूर्ण आयोजन है जहाँ लोग अपने प्रिय कथाकार से मिलने दूर दूर से आए हैं। यह समारोह प्यार मुहब्बत और खुलूस की मिसाल है।" इस पुस्तक का संपादन सुपरिचित कथाकार व रचना समय के संपादक हरि भटनागर और ब्रजनारायण शर्मा ने किया है।

इससे पूर्व नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव और कृष्णा सोबती ने इस पुस्तक का लोकार्पण किया। राजेन्द्र यादव ने तेजेन्द्र शर्मा की कथावाचन शैली की सराहना करते हुए कहा कि तेजेन्द्र को आर्ट ऑफ नरेशन की गहरी समझ है। तेजेन्द्र बख़ूबी समझते हैं कि स्थितियों को, व्यक्ति के अर्न्तद्वन्द्वों , सम्बन्धों की जटिलताओं को कैसे कहानियों में रूपान्तरित किया जाता है। प्रवासी लेखन के समूचे परिदृश्य में तेजेन्द्र की कहानियाँ परिपक्व दिमाग़ की कहानियाँ हैं।

हरि भटनागर ने पुस्तक में लिखी अपनी भूमिका का पाठ करते हुए बताया कि तेजेन्द्र आदमी की पीड़ा को रोकर और बिलख कर नहीं बल्कि हँस-हँस कर कहने के आदी है। उनकी कहानियाँ दो संस्कृतियों के संगम की कहानियाँ हैं। वरिष्ठ कथाकार नूर ज़हीर ने पुस्तक में शामिल अमरीका की सुधा ओम ढींगरा का एक ख़त पढ़ते हुए कहा कि तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों का असर एक प्रबुद्ध पाठक पर कैसा हो सकता है, इस ख़त से साफ पता चलता है।

इससे पूर्व बीज वक्तव्य देते हुए अजय नावरिया ने कहा कि यह पुस्तक अभिनंदन ग्रन्थ नहीं है क्योंकि यहाँ अन्धी प्रशंसा की जगह तार्किक्ता है। मोहाविष्ट स्थिति की जगह मूल्यांकन है। अजय ने तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों के बहाने हिन्दी कथा साहित्य पर चर्चा करते हुए कहा कि इन कहानियों के मूल्यांकन के लिये हमें नई आलोचना प्रविधि की दरकार है"।

कार्यक्रम का संचालन अजित राय ने किया। समारोह में राजेन्द्र प्रसाद अकादमी के निदेशक बिमल प्रसाद, मैथिली भोजपुरी अकादमी के उपाध्यक्ष अनिल मिश्र, असग़र वजाहत, कन्हैया लाल नन्दन, गंगा प्रसाद विमल, लीलाधर मण्डलोई, प्रेम जनमेजय, प्रताप सहगल, मुंबई से सूरज प्रकाश, सुधीर मिश्रा, राकेश तिवारी, रूप सिंह चन्देल, सुभाष नीरव, अविनाश वाचस्पति, अजन्ता शर्मा, अनिल जोशी, अल्का सिन्हा, मरिया नगेशी (हंगरी), चंचल जैन (यू.के.), रंगकर्मी अनूप लाथर (कुरुक्षेत्र), शंभु गुप्त (अलवर), विजय शर्मा (जमशेदपुर), तेजेन्द्र शर्मा के परिवार के सदस्यों सहित भारी संख्या में साहित्य-रसिक श्रोता मौजूद थे।

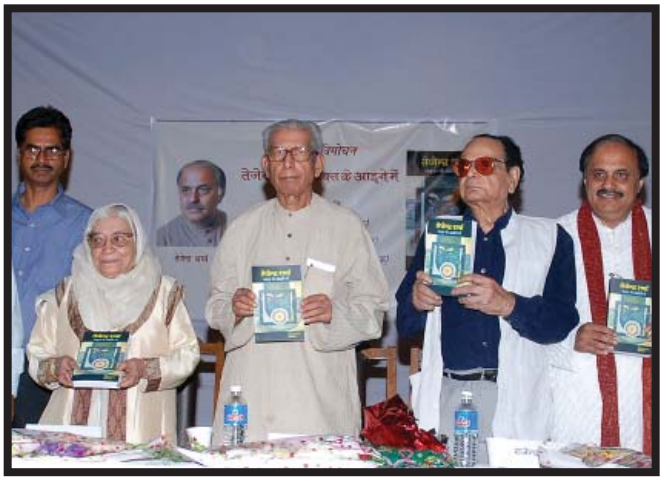

हिन्दी सूचना

"हिन्दी भवन में सम्मान समारोह"

4 फरवरी 2009 को दिल्ली स्थित हिन्दी भवन में 'विश्वा' पत्रिका की संपादक रेणु राजवंशी गुप्ता के सम्मान में एक स्वागत समारोह एवं गोष्ठी का आयोजन किया गया। हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक श्री नरेन्द्र कोहली जी ने शाल व सरस्वती की जी प्रतिमा एवं सम्मान पट्ट देकर रेणु गुप्ता का स्वागत किया। रेणु गुप्ता ने ' अंर्तराष्ट्रीय हिन्दी समिति' का विशेष परिचय दिया और विश्वा की प्रतियां सबको वितरित कीं। इस अवसर एक कवि गोष्ठी भी की गई।

इसका संचालन युवा कवि गजेन्द्र सोलंकी ने किया। हिन्दी भवन के निदेशक डॉ. गोविन्द व्यास , डॉ. कमल किशोर गोयनका एवं अन्य अनेक माननीय साहित्यिक कीर्तिमान वहाँ पर उपस्थित थे। समारोह का आयोजन " शब्दाँचल', हिन्दी साहित्य सभा एवं सस्कार भारती" की ओर से किया गया था।

जिन्दगी ऐसे जियो

किरन सिंह (भारत)

चंचल, लहराती हुई
हवा की तरह स्वच्छन्द
बच्चों की तरह मासूम,

कोयल सी गुनगुनाती
दिल को छू जाने वाली,

हंसती खिलखिलाती
सदा मुस्कुराती,

जिन्दादिल, दोस्तों की दोस्त
कहते हैं जिसे हम 'जिन्दगी',

मित्र! जियो तो बस
जिन्दगी की तरह खुल के जियो,
गम के सायों को परे कर
हॅसते खिलखिलाते हुये जियो

कविता

चंदर वर्मा (अमेरिका)

किसी गुनाह का
जिस पर असर नहीं होता
कभी भी आदमी
वो आदमी नहीं होता।
नमाज़े बांधकर
जो कल संवारे है अपना
किसी मासूम का
उससे कत्ल नहीं होता।
इक मासूम को
कोड़ों से पीटा है किसने?
खुदा के बंदों से
ये कहर नहीं होता।
ये तेरी - मेरी नहीं
किस जहाँ की बेटी है
सलूक बेटी से
ऐसा कभी नहीं होता।
बहुत हैरान हैं
मर्दानगी पे हम उनकी
किसी औरत को मारे
मर्द वो नहीं होता।

■ चित्रकाव्य-कार्यशाला

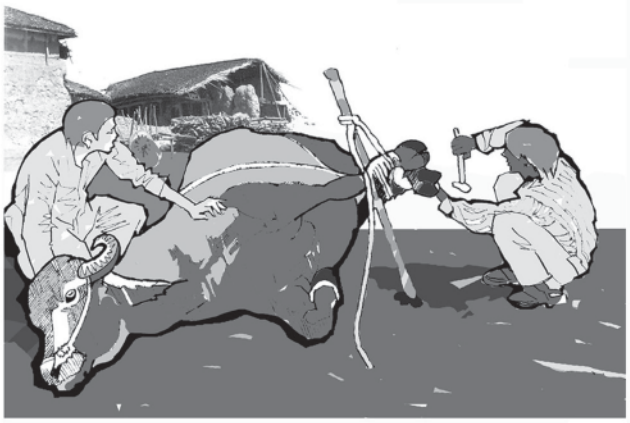

पैर में उसके खुर लगा कर, दिन भर उसे चलाते हो
एक जोड़ी जूता मँगवा दो, इतना क्यों घबराते हो?
बाटा के जूतों पर कल से, पचास प्रतिशत् सेल लगी
बच्चे, बूढे भागे जाते, वहाँ है रेलम पेल लगी।
तुम भी पंक्ति में लग जाओ, कभी तो बारी आएगी
साँड की पत्नि देख साँड को, हो बलिहारी जाएगी।

उषा देव (अमेरिका)

●

भैंस के खुर
आधी सोयी, आधी जागी, रस्सी है खम्बे पर बांधी
लेट रही है भैंस मजे से, उसके खुर घिस गए लगे से
मालिक उसका बड़ा दयालू, जिसका एक मित्र है कालू
कालू आकर लगा रहा है, लोहे के खुर सजा रहा है
अब उसके खुर नहीं घिसेंगे, बिन्दु खून के नहीं रिसेंगे
वह मालिक को खुश कर देगी, दूध का बर्तन अब भर देगी
झोपड़ी में उसकी खुरली है, उसका मालिक तो मुरली है
वह उसको चारा डालेगा, भैंस दुधारु को पालेगा

जगदीशचंद्र शारदा (कैनडा)

●

बाँध कर कोल्हू में निरीह को, दिनभर उस से काम लिया।
थक कर गिरा जो धरती पर तो, पैर बाँध कर पीट दिया।

महेन्द्र कुमार देव (अमेरिका)

घोडे कि जगह
भैंसे के पैरों में
लगते देख रहा हूँ नाल,
सच है 'अमित'
चल रहा है ये
कलियुग का काल!

अमित कुमार सिंह (कैनेडा)

●

पापी मनुष्य कर रहा है
ये तू कैसा पाप?
बेजुबान जानवर नर
अत्याचार का लगेगा तुझे शाप!

किरन सिंह (भारत)

●

लेटे लेटे पीड़ाग्रस्त, सोंच रहा है ये भैंसा
हे भगवन, यह समझ न आए, तेरा इन्सां है कैसा?
तूने सख्त पांव दिये थे, काटे, कंकड चुभ ना पाएं
सारा जीवन रहूं मैं चलता, फिर भी यह घिस ना पाएं
नाक में रस्सी डाल के खेंचें, पीट पे सोटी बरसाते हैं
मेरी क्षमता से अधिक ही, मुझको यह चलवाते है
बांध के पाओ मेरे जबरन, लगाते है लोहे के नाल
मैं तो हूं बेजुबान भगवन, तुम ही इनसे करो सवाल!

सुरेन्द्र पाठक, टोरांटो, कैनडा

●

गाय भूमि पर जबरन लेटी
हुई खुरों की पीडा से पीडित।
खुर लगवाते पडी कानों में बांसुरी ध्वनि
इुई सुनने को आतुर वो प्यारी ध्वनि
कर खुरों को कार्य समाप्त
जा पहुंची बासुरी ध्वनि के पास।

वास्ती घई, कैनेडा

●

■ **पाठकों की प्रतिक्रिया अपेक्षित है!**

■ चित्रकाव्य-कार्यशाला

इस चित्र को देखकर आपके मन में जो भी भाव आयें उन्हें अधिक से अधिक छः पंक्तियों के अन्दर व्यक्त करके भेजें।

सम्पादक
यतेन्द्र वार्षनी

गर्भनाल

garbhanal@ymail.com

GARBHANAL

प्रवासी भारतीयों की मासिक ई-पत्रिका

आपको हिंदी बोलनी आती है? तो फिर हिंदी में ही बात करिये

आप कुछ लिखने चाहते हैं? तो फिर हिंदी में लिखिये

अपनी बोली-बानी में बात करने का मंच है गर्भनाल ई-पत्रिका, जो हर माह नियमित तौर पर आपके ईमेल बॉक्स में पहुँच जाती है. इसे पढ़ें और परिजनों, मित्रों को फॉरवर्ड करें.

GARBHANAL

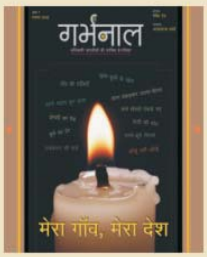

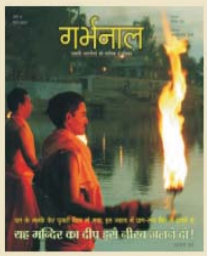

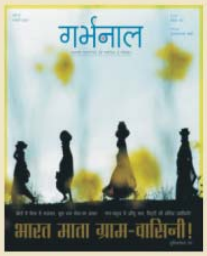

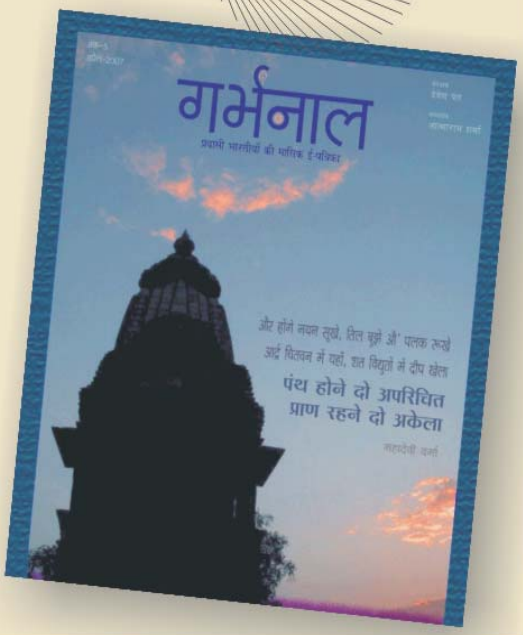

गर्भनाल के पुराने अंक उपलब्ध है.

http://hinditoolbar.googlepages.com/garbhanal

आतंक और आकांक्षा

जगमोहन हूमर (कैनेडा)

मेरी पुण्य धरती को किसने चुराया
कैसा अंधेरा है कैसा है साया।

यहाँ बह रही हैं प्रलय की हवाएं
क्रन्दन मचा है जलती चितायें।

ले क्रोध की लौ मानव सुलगता
आतंक संहार का है नृत्य करता।

यहाँ रक्त रंजित है संतप्त धरती
यहाँ शव पड़े हैं दिशायें तड़पती।

यहाँ बाल सहमे हैं विक्षुब्ध जननी
प्रिय से बिछुड़ के विह्वल है सजनी।

लौटा दो मेरी वो धरती विधाता
जहाँ स्वप्न साकर हों मेरे दाता।

जहाँ खेत खलिहान में फसल झूमे
बहकती हवाऐं फूलों को चूमे।

जहां चांदनी का वसन हो निशा पर
सुबह की लाली हो पूरब दिशा पर।

जहाँगुनगुनाती निर्झर की कलकल
कोई धुन अनोखी कोई गीत कोमल।

जहां मुक्त नभ में पक्षी विचरते
श्रम से घरौदों का निर्माण करते।

जहाँ साँध्य वेला में स्वर बांसुरी का
देता हवाओं को नगमा खुशी का।

जहाँ बाल करते हों स्वच्छन्द कलकल
जहाँ मां को मिलता हो ममता का संबल।

जहँ प्रियतमा के अधर मुस्कुराते
प्रिय से मिलन के मधुर गीत गाते।

जहँ रोज़ पूजा के स्वर गूँजते हों
जहाँ शंखनादों के सुर रीझते हों।

जहाँ मंदिरों में घंटे हों बजते
जहाँ पुण्य मंत्रों के स्वर हों उभरते।

जहां वाद्य बजते हों बजते मझीरे
घर घर में आंगन में नदिया के तीरे।

जहां दीपमाला हो घर घर दिवाली
जहां रंगभीनी हो होली निराली।

जहां शिल्पियों की निपुण उंगलियों ने
पाषाण में थे सजग प्राण फूंके।

जहां तूलिका ने मधुर चित्र खींचे
जहां काव्य धारा ने मन प्राण सींचे।

घुँघरू की छनछन पैरों की थिरकन
जहां नृत्य मुद्रा में चंचल सी चितवन।

जहां प्रेम की बस बहे स्निग्ध धारा
नहीं क्रोध की कभी अंध कारा।

लौटा दो मेरी वो धरती विधाता
जहां स्वप्न साकार हों मेरे दाता।

हिन्दी चेतना की समीक्षा देखें
कथा चक्र
- http:// Katha Chakra.blogspot.com

हिन्दी चेतना द्वारा आयोजित १९ जनवरी २००९ टोरंटो में हास्य कवि सम्मेलन की कुछ झलकियां

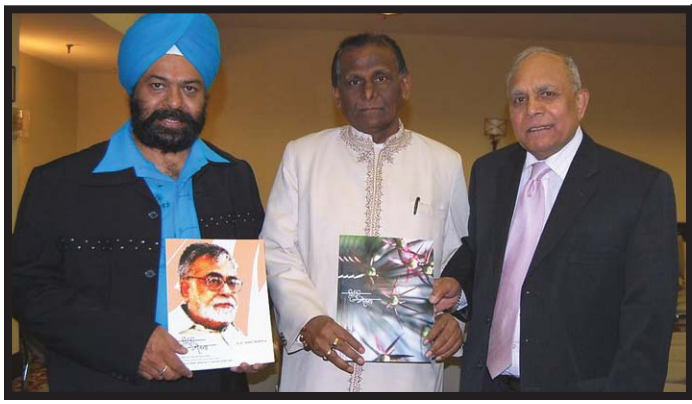

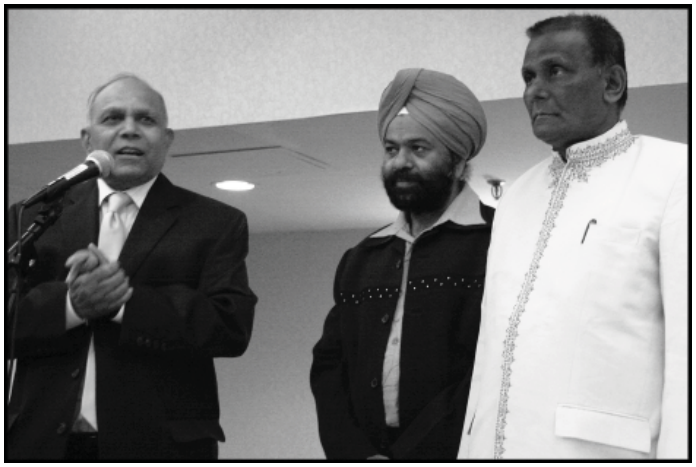

प्राप्त पुस्तकें

रूपसिंह चन्देल
शहर गवाह है

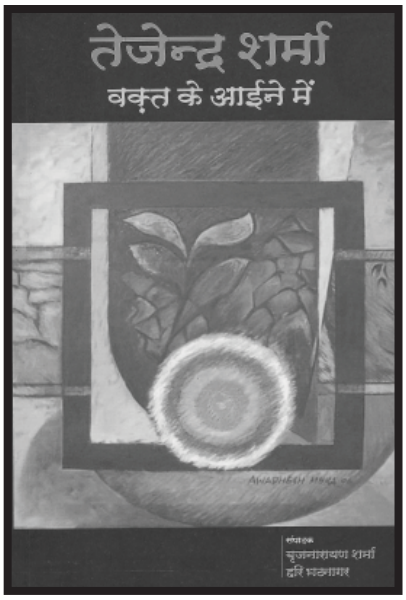

तेजेन्द्र शर्मा
वक़्त के आईने में

आधारशिला

असतो मा सद्गमय
रेणु 'राजवंशी' गुप्ता

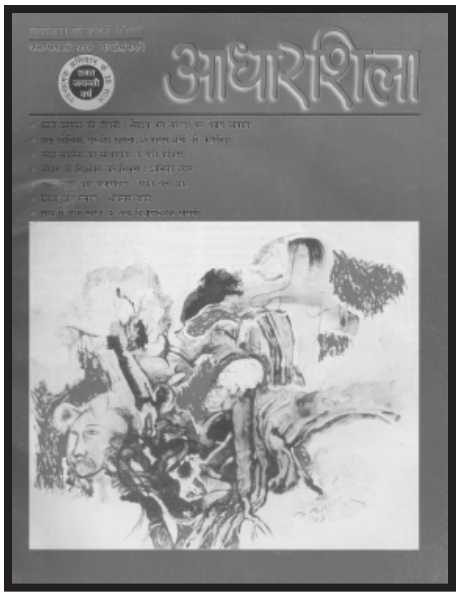

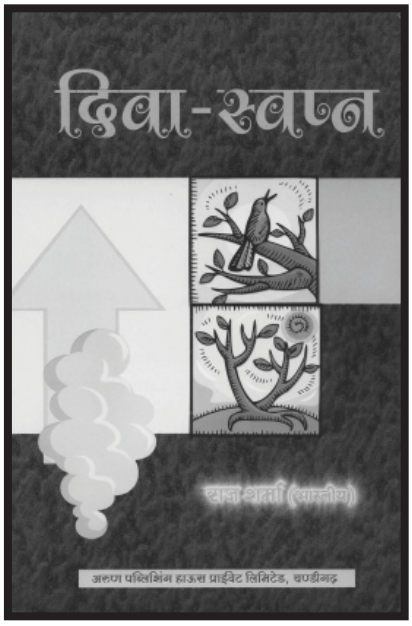

दिवा-स्वप्न
अरुण पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, चण्डीगढ़

नई पीढ़ी के नवनिर्माण की पत्रिका
नयासूरज
नूतन वर्ष अभिनंदन
2009
नये वर्ष में नई किरण के साथ तुम्हारा अभिनन्दन। हे प्राची के सूर्य तुम्हारा करता 'दीपंकर' वन्दन।।
संपादक :
डॉ. दीपंकर गुप्ता

कैदियों का कब्ज़ा

अभिनव शुक्ल (अमेरिका)

एक बार एक कवि सम्मेलन में एक मंत्री जी आए,
अपने साथ सिक्यूरिटी गार्ड्स के चार कमांडो भी लाये,
उनके सामने हमारी कविता पढ़ने की बारी आई,
समाज के सत्य को दर्शाती हुई एक रचना हमने सुनाई,
माननीय नेताओं को हमने कुर्सी से उठा कर सड़क पर दे मारा,
अक्चुअली हमको मालूम नहीं था की,
इन्होंने भी खाया था घोटालों का चारा,
मंत्री जी नें हमको घूरकर देखा,
फिर अपने आई फ़ोन से हम पर ब्रह्मास्त्र फेंका,
खेल ही खेल में,
हम पहुँच गए जेल में,
जेल का माहौल और भी रंगीन था,
हर कैदी मस्त और जेलर ग़मगीन था,
हमको एक सांड टाईप मोटे से कैदी ने अपने पास बुलाया ,
और बोला,
“क्यों बे, तू वही कवि है न,
जिसने अपनी कविताओं में आतंकियों को है धमकाया,
मैं असलम सिंह शादी हूँ,
पेशे से आतंकवादी हूँ,”
यह सुनना था की हमारी आत्मा परमात्मा के ध्यान में खो गई,
हमारी सिट्टी पिट्टी गुम हो गई,
मन आटोमेटिक्ली बोल उठा, जीवन असत्य है,
राम नाम सत्य है,
वो भाई हमारे मनोभावों को समझ गया और बोला,
“तुम मत घबराओ,
मैं अभी तुमको नही मारूँगा,
आजकल तो मैं जेल में छुट्टियाँ मना रहा हूँ,
मिटटी के तेल से बम और दीवाली के पटाखों से बारूद बना रहा हूँ”
तभी एक दूसरा कैदी हमको देख कर मुस्कुराया,
ख़ुद चलकर हमारे पास आया,
हमको अपना कार्ड देते हुए बोला,
“आजकल वैसे भी नौकरियों की बड़ी मारामारी है,
मैं समझ गया हूँ की तेरी समस्या बेरोजगारी है,
ये कार्ड लेकर मुझ से बाहर मिलना,
तेरे जीवन में भी धन वृक्ष खिल जायेगा,
कौनट्रेक्ट पर काम मिल जायेगा,
कई बेटे अपने बाप को, संपोले सांप को,
भाई अपने भाई को, ससुर जमाई को,
पति पत्नियों को और पत्नियां पतियों को,
मरवाना चाहती हैं,
फैमिली का काम है,
इसलिए अडवांस बुकिंग करवाती हैं,
कोई चिंता की बात नही है,
तेरे लिए ये काम बिल्कुल सही है।”
हमने किसी तरह हाथ पैर जोड़ कर उनसे किनारा किया ही था कि,
एक तीसरे अत्यन्त भोले भाले से दिखने वाले कैदी नें हमको पकड़ लिया,
और बोला कि,
“मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ,
सिद्धार्थ तिवारी हूँ,
गोलमाल पार्टी का एजेंट हूँ,
और इस जेल में परमानेंट हूँ,
हमारी पार्टी ने फ़ैसला किया है कि,
आने वाले चुनावों में किसी भी आपराधिक छवि वाले,
उम्मीदवार को टिकेट नहीं दिया जायेगा,
छवि का क्या है, वह तो झूठी भी हो सकती है,
पूरी तरह अपराधियों को ही लिया जायेगा,
मैं कैम्पस प्लेसमेंट कर रहा हूँ,
इसी वजह से यहाँ चर रहा हूँ,
आप में मुझे एक पूरी तरह सक्षम मंत्री दिख रहा है,
मंत्री क्या प्रधानमंत्री दिख रहा है,
यह फार्म भर दीजिये अब आप एक एलिजिबल कैनडीडेट हैं,
इस जेल के अन्दर आने का एक और बाहर जाने के कई गेट हैं।”
तभी हमने देखा की जेल के एक कमरे से घुँघरुओं की आवाज़ें आ रही हैं,
शराब की बोतलें अन्दर जा रही हैं,
हमने एक भाई से पूछा कि ये क्या हो रहा है,
तो पता चला की उस कमरे में एक नेता बंद है,
यह सब उसी का दंड फंड है,
हमने मन ही मन सोचा कि जनता की गाढ़ी कमाई जला रहे हैं,
क्या यही लोग हैं जो भारत को चला रहे हैं,
उस रात जेल का हर कर्मचारी ज़्यादा शराब पीकर गहरी नींद सो गया,
और सुबह तक जेल पर कैदियों का कब्ज़ा हो गया।

होली की बोली

अमित कुमार सिंह (कैनेडा)

जीन्स पैंट और
टी शर्ट में ,
घूम रही थी एक गोरी,
नाम पूछा तो
बोलती है,
है वो होली।

मैंने पूछा, तो बताओ
कहाँ है गुलाल?
सुन ये वो हंस पड़ी ,
और बोली-
नीली है जीन्स
पीली है ये टी शर्ट,
सुर्ख हैं मेरे गाल,
रंग ये लाल?

अरे वो ना समझ
इक्कीसवीं सदी है ये
समय का है अभाव
रंगों का ऊंचा है भाव
पर्यावरण प्रदूषण मुक्ति
आंदोलन का है ये प्रभाव,
केबल के रस्ते
अब हो रहा है
रंगो का बहाव,
इठला कर होली ये बोली,
खेल रहे हैं लोग अब केवल
साईबर होली।

इस आधुनिक युग में
दूरियाँ तो गयी हैं घट
पर फाँसला दिलों
का बढ़ गया है अब,
रफ़्तार की इस दुनिया में
होली अपना महत्व खोने लगी,
और सोच अपने भविष्य को,
होली की आँखें नम होने लगीं।

शुभ चिंतक

अनुराधा चन्दर (अमेरिका)
डॉ. ध्रुव कुमार (अमेरिका)
डॉ. बबिता श्रीवास्तव(अमेरिका)
श्रीमती सरोज शर्मा (अमेरिका)
राज जोशी (अमेरिका)
सुधा राठी (अमेरिका)
रूप सिंह चंदेल (भारत)
सुभाष नीरव (भारत)
डॉ. प्रेम जनमेजय (भारत)
स्नेह सिंह्मवी (कैनेडा)
अनुपमासिंह (कैनेडा)
प्रेम मलिक (कैनैडा)
डॉ. सुभाष चन्द्र शर्मा (कैनेडा)
रंजना शर्मा (कैनेडा)
अरुणा भटनागर (कैनेडा)
लता सेठ (कैनेडा)
नीरा शर्मा (कैनेडा)
सूरज प्रकाश (भारत)

MUST TRY ONCE

Experienced, Imaginative, Artistic Handyman

Who can reshape your kitchen, Washroom, Patio, New wall constructions, Plumbing and Renovation needs.

Serve Toronto and GTA. Prices are reasonable.

Call: 905-864-8285

उन्मेष

डॉ. शिवनन्दन यादव (कनाडा)

पतझरों की बात मत मुझसे कहो
महकता मधुमास लाना है मुझे,
आँधियों का, ज्वार का, तुम भय न दो
क्षितिज के उस पार जाना है मुझे।

साँझ के ढलते हुये रवि की किरण
कुछ न कह पाई सिसक कर सो गई,
काँपते दल पर कहीं नीहारिका
तनिक सिहरी धूल में मिल खो गई।

प्रकृति की यह पंगुता मुझको न दो
दिग्विजय का स्वर जगाना है मुझे।

अब नयन में गगनभेदी भावना है
प्राण में गतिशील कोई साधना है,
कौन - सा वरदान है दुर्लभ मुझे अब
आज ध्रुव- सी अटल मम आराधना है,

मत कहो दासत्व चिर अभिशाप मेरा
क्रान्ति का दीपक जलाना है मुझे।

विश्व क्षणभंगुर सही
पर एक शाश्वत सत्य इसमें,
प्राण स्पन्दन सही
पर एक अक्षय तत्व इसमें,

मत कहो कुछ साँस की यह ज़िन्दगी मेरी
अमरता का गीत गाना है मुझे।

आज के रवि ने नया दैदीप्य पाया
आज दिशि -दिशि में नया उन्मेष छाया है,
आज सिंहलद्वीप में जैसे विकल
जानकी को राम का सन्देश आया है

मत कहो दशकन्ध की अविजेय है सीमा
पवनसुत इक बार ध्याना है मुझे ।

गीत मैं लिखता रहूंगा

भगवत शरण श्रीवास्तव "शरण" (कनाडा)

गीत तो लिखता रहा हूं, गीत मैं लिखता रहूंगा
प्रेरणा का स्त्रोत हो तुम , भाव निज भरता रहूंगा
गीत गाथा विश्व की है, रीत पर चलता रहूंगा
तुम हृदय की बात कहना , मैं सदा सुनता रहूंगा।

दर्द हो या सर्द आहें प्यार मैं करता रहूंगा
झंझा में दीपक जलाना , स्नेह बन जलता रहूंगा
तेरी छवि तो नयन में है मूर्ति मैं गढ़ता रहूंगा
चेतना में रख तुम्हे मैं, नाम ले रटता रहूंगा।

तुम अगर चन्दन तो मैं वन्दन ही कर के
अब प्रार्थना में शीश ये अपना सदा रखता रहूंगा
अश्रु देके क्या किसी को पा सका कोई कभी सुख
मैं सुमन की बात कन्टक से सदा करता रहूंगा।

प्रीति की है रीति कि विपरीत को अपना बना कर
प्रीति की पावनता की गरिमा सदा रखता रहूंगा
पीर पीकर हँसाया ज़िन्दगी की बन्दगी को
मैं तो रचनाकार को हँस हँस नमन करता रहूंगा।

ज्वाल बरसाये अगर कोई किसी पर भी कहीं
मैं सलिल सा बन सकूं ये प्रयास भी करता रहूंगा
सत्य है अनुराग जग में जानते हैं हम सभी तो
मैं इसे हर प्राणी के मन भाव में भरता रहूंगा।

कान्हा के साथ मैंने भी खेली होली

नीना वाही (अमेरिका)

वृन्दावन की कुंज गली थी।
फागुन की एक अनमोल घड़ी थी।
राधा की चोली हरी थी।
कान्हा की पिचकारी भरी थी।
राधा का आंचल जो जरा ढलका,
कान्हा का हाथ भी तब फिसला
राधा की चोली रंग से भरी थी।
लाल गुलाल से माँग भरी थी।
लाज से पलकें भी झुकी थी।
सखियाँ खड़ी थी अलबेली बहार थी।
हंसी और ठिठोली भी जमी थी।
मैने भी ऐसी एक होली खेली थी।
सपने में कान्हा से जब मैं मिली थी।
मैने भी ऐसी एक होली खेली थी।

• •

होली का हुड़दंग

राज कश्यप (कैनेडा)

अमरीका में छिड़ गया होली का हुड़दंग
काले गोरे मिल गये, कोई न देखे रंग
कहीं नाचते कृष्ण -सुदामा
कहीं झूमती गोरी बामा
भीड़ भरे हैं मन्दिर सारे
कहीं हो रहा कृष्णा -कृष्णा
कहीं हो रहा रामा -रामा
कहीं घुट रही भंग -ठंडाई
और कहीं बँट रही मिठाई
यह विचित्र होली है आई
अब सब मिलकर नाचो भाई
इस होली को देख - देखकर
झूम उठा मेरा मन ऐसे
अमरीका के नये राज्य में
सारा विश्व एक हो जैसे
आतंकों को बंद करो अब
प्रभु से बोलो यही प्रार्थना
विश्व - शांन्ति जग में ले आओ
बंद करो आतंक - यातना
अमरीका में छिड़ गया
होली का हुड़दंग
कोई न देखे रंग।

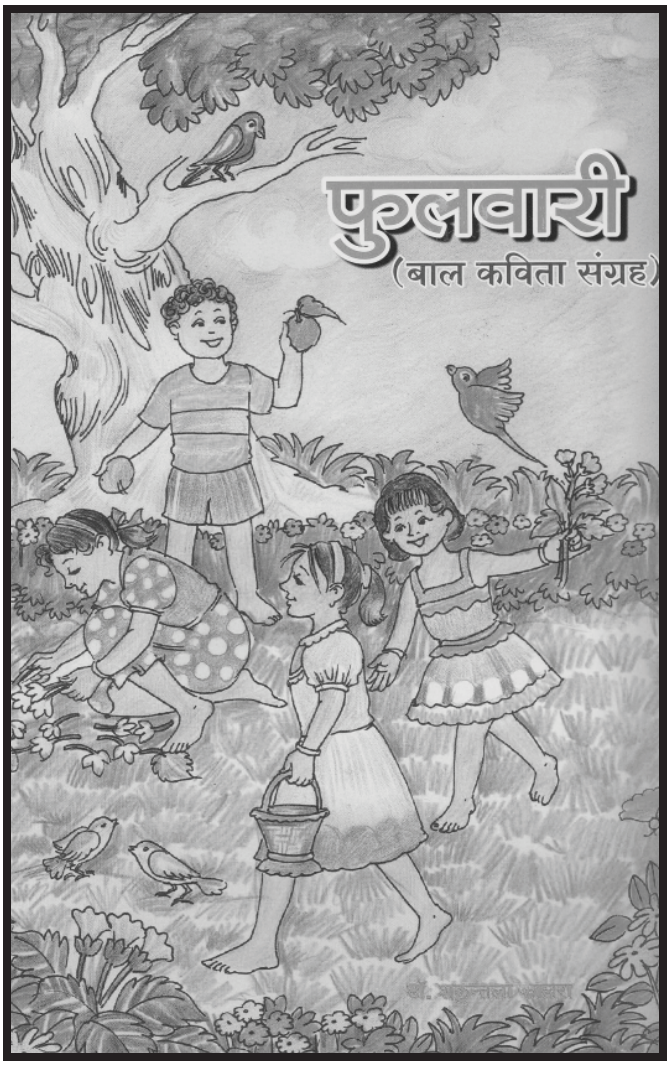

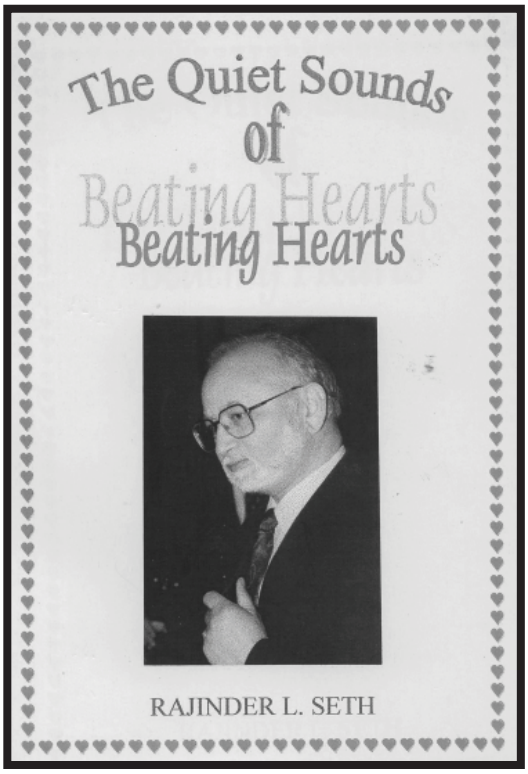

शोक समाचार

प्रख्यात साहित्यकार विष्णु प्रभाकर

प्रख्यात कथाकार ,प्रतिष्ठित साहित्यकार विष्णु प्रभाकर अब हमारे बीच नहीं होंगे। होंगी तो केवल उनकी यादें जिनमें हम हिंदी साहित्य के स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर आज तक के विकास के सोपानों पर विचार कर सकेंगे।

गाँधीवादी विचारक विष्णु प्रभाकर ने प्रख्यात बंग्ला उपन्यासकार शरत चंद्र की जीवनी का ' आवारा मसीहा' के नाम से पाठकों के सामने लाकर उस महान लेखक के संदर्भों को आम आदमी के लिए सुलभ कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। पुरुस्कार उनके लिए कोई मायने नहीं रखते थे। उन्होंने हमेशा पुरुस्कार देने वाली संस्था को ही सम्मानित किया। 'हिंदी चेतना' परिवार महान साहित्यकार विष्णु प्रभाकर जी को श्रद्धा के फूल अर्पित करता है ।

श्रद्धेय भाई टी. डी. द्विवेदी को भावभीनी श्रद्धांजलि

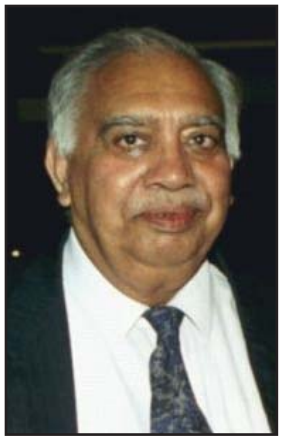

मैं जब भारत की यात्रा पर सप्त्नीक था तब अचानक एक दिन भाई साहब ओ.पी द्विवेदी का ग्वैल्फ से फोन मिला कि भाई टी.डी. द्विवेदी हम लोगों के बीच नहीं रहे। यह सुनकर विश्वास विश्वास नहीं हुआ कि ऐसे ज़िंदा दिल तथा हँसमुख व्यक्ति को हमने सदा के लिए खो दिया है। वे कनकाडिया विश्वविद्यालय में, मांट्रियाल के प्राध्यापक पद से से निवृत्त हो पिछले कई वर्षों से पूर्वी उत्तर प्रदेश में अपनी चिकित्सालय सम्बंधी योजना पर शुद्ध सेवा और समर्पण की भावना से कार्य कर रहे थे। इसी पुनीत योजना के सिलसिले में वे सपत्नीक लखनऊ गये थे कि अचानक हृदय का गम्भीर दौरा पड़ा और वे अपनी महायात्रा पर निकल पड़े।

यादों के पन्ने जब पलटता हूं तो मेरी स्मृतियों में सितम्बर 1971 का वह दिन बरबस याद आता है जब मैं पहली बार कैनेडा अपने अध्यन के लिए माँट्रियाल आया था। मुझे हवाई अड्डे पर लेने भाई ओ.पी.द्विवेदी के साथ श्री टी.डी. द्विवेदी भी आये थे। वास्तव में तभी से उनसे स्नेह सम्बन्ध जुड़ा और उन्होंने मुझे गले लगाकर अपने ही परिवार के एक सदस्य के रूप में अपना लिया। उस दिन के बाद जब कभी मिले बड़ी आत्मीयता से वे मिलते रहे।

जब तक ग्वल्फ और किचनर वाटरलू में था साल में एक दो बार माँट्रियाल का चक्कर जरूर लग जाता था और वे परिवार के साथ यदाकदा आते रहते थे। मैं भाग्यशाली हूँ कि मुझे उनके सान्निध्य में सदैव एक विस्तृत परिवार के सदस्य का अहसास मिलता रहा।

मेरे 1978 में कैलगरी आने के बाद उनसे भेंट तो बहुत कम होती थी लेकिन कभी - कभार टेलीफोन पर बातें अवश्य हो जाती थी। इसके बावजूद मैंने उनके स्नेह की प्रगाढ़ता में कभी कमी महसूस नहीं की ।

मेरी किताब हिन्दी साहित्य परिषद कैनेडा की स्थापना की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में मेरे द्वारा संपादित की जाने वाली पुस्तक 'उत्तरी अमेरिका' के हिन्दी साहित्यकार के विषय में अंतिम बार उनसे भेंट हुई थी। वे इस संस्था के प्रथम अध्यक्ष थे और उन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में अपना आशीर्वाद मुझे दिया था। कैनेडा में 45 वर्षों से अधिक रहकर उन्होंने न केवल हिन्दी का अपितु अपनी भारतीय संस्कृति की धरोहर का खुले दिल से समर्थन किया । वे सर्वधर्म के सिद्धान्तों के सच्चे हिमायती थे।

वे संवेदनशील , भावुक, और दयावान व्यक्ति थे। स्वास्थ सम्बन्धी जन कल्याण की योजनाओं पर भारत के अविकसित क्षेत्रों में कार्यरत थे। नि:सन्देह समाज ने एक निश्छल समाज सेवी खो दिया है। हिन्दी एवम् भारतीयता के पुरोधा को शत शत नमन ।

श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी , अध्यक्ष
हिन्दी साहित्य परिषद , कैनेडा

Hindi Pracharni Sabha

Membership Form

Annual Subscription: **$25.00 Canadian**

Life Membership: **$200.00 Canadian**

Donation: **$ _____**

Method of Payment: **Cash, cheques and drafts payable to "Prachani Sabha"**

Your Name:_____

Address: _____

_____

Telephone: Home: _____

Business: _____

e-mail: _____

_____

Contact in Canada:
phone : 905-475-7165
Fax: 905-475-8667
Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham, Ontario L3R 3RI
Canada

e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:
phone : 1- 919-678-9056

Dr. Sudha Om Dingra
101 Guymon Court
Morrisville, North Carolina
NC27560, USA

e-mail: ceddlt@yahoo.com

CARPET PLUS

SAVE UP TO 70%
LUXURIOUS CARPETS
ORIENTAL RUGS

Commercial &
Residential
Installations

F R E E

- ***Installation***
- ***Underpad***
- ***Delivery***
- ***Shop at Home***

(416) 661-4444
(416) 663-2222

Vinyl Tiles

Broadloom

180 Winges Rd.,
Unit 17-19
Woodbridge, Ontario
L4L 6C6

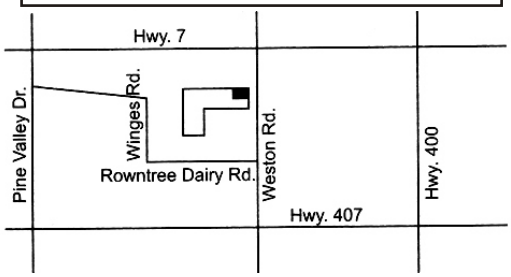

Finest Source of :

International Flag Pins

Campaign Buttons

Friendship Pins

Embroided Crests (Patches) of All Countries

International & Provincial Flags of all sizes, Souvenirs

Mini Banners & Keychains of all countries available

Custom work available for Pins, Buttons, Crests and Flags
At Factory Direct Prices Free Set up & Shipping

We carry more than 500 Titles each of Pins, Flags & Crests in stock

Pinsnflags.com Inc., 395 Spadina Ave., Toronto, Ont., M5T 2G6

Tel: 416-596-1574 Fax: 416-596-2248
Toll Free: 1-877-322-4771 E-Mail: veena@pinsnflags.com
www.pinsnflags.com

मेरे मित्रो! हिन्दी बोलो, अपने बच्चों को हिन्दी सिखाओ! अपनी भाषा और संस्कृति को बचाओ!1